उर्दू साहित्य
हिन्दी
द्वैमासिक
फ़िराक़
अंक

पाँचवाँ अंक

सम्पादक

बलवन्त सिंह

मूल्य

एक रुपया

उर्दू-साहित्य प्रकाशन

२१६, दायरा शाह अजमल, इलाहाबाद

उर्दू साहित्य का वार्षिकांक

कहानी विशेषांक

उर्दू साहित्य का अगला अंक वार्षिकांक कहानी विशेषांक होगा। अभी तक के सभी अंकों से अद्वितीय तथा मुग्धकारी होगा इसका कलेवर !

उर्दू कहानियों का भाषा बहाव, प्रासंगिक व्यंग से कौन परिचित नहीं है? उस पर ए० हमीद, हाजरा मसरूर, जमीला हाशमी, शौकत सिद्दिक़ी, जीलानी बानू, वाजिदा तवस्सुम, आग़ा नासिर, आग़ा बाबर, अशरफ़ सुबूही, हसन असकरी आदि लेखकों का परिचय किससे नहीं है। इनकी एक से एक बढ़कर रचना आयीं।

यही हैं उर्दू साहित्य कहानी विशेषांक के लेखक।

इतना विशिष्ट होगा यह अंक। पर मूल्य एक रुपया पचास नया पैसा ही होगा जब कि क़रीब २०० पृष्ठ होंगे। इतना सुन्दर कलेवर तथा पाठ्य सामग्री अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रतियाँ सीमित हैं अतः अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

व्यवस्थापक

उर्दू साहित्य | वर्ष १ : अंक ५

*

सम्पादक —बलवन्त सिंह

*

बलवन्त सिंह

सम्पादक 'उर्दू साहित्य' की हिन्दी में रचनाएँ

रात, चोर और चाँद :

बलवन्त सिंह का यह उपन्यास आज से करीब बारह वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास ने हिन्दी जगत को चौंका दिया। पहला संस्करण जल्दी ही समाप्त हो गया लेकिन पाठकों की माँग जारी रही। आप को यह जान कर खुशी होगी कि अब यह मशहूर उपन्यास शीघ्र ही मारकेट में आ जायगा। इसका कम कीमत का पाकिट एडीसन भी निकल रहा है और इसके साथ ही ज्यादा क़ीमत पर लाइब्रेरी एडीसन भी निकलेगा। इस उपन्यास में बँटवारे से पहले के पंजाब के देहाती जीवन की झलक दिखायी गयी है, यह अपनी किस्म का एक ही उपन्यास है जिसे पढ़े बिना हिन्दी का कोई पाठक यह नहीं कह सकता कि उसने हिन्दी के सभी महान् उपन्यास पढ़ डाले हैं।

काले कोस : बड़े साइज़ के क़रीब पौने चार सौ सफ़ों पर फैले हुए इस उपन्यास में पंजाब के बँटवारे के समय की झलक दिखायी गयी है। भारत के इस अंग के कटते समय यहाँ के लोगों को कितना दुख और कितना दर्द सहना पड़ा इसका अन्दाजा इस उपन्यास को पढ़ने के बाद ही लगाया जा सकता है।

ऊषा : यह नावलेट पहले पहल एक मामूली लड़की के नाम से हिन्दी की एक पत्रिका में धारावाहिक छपता रहा फिर ऊषा के नाम से किताबी शक्ल में छपा। पिछले वर्ष लेखक ने इसका उर्दू में अनुवाद करके छपवाया तो उत्तर प्रदेश सरकार ने लेखक को ढ़ाई सौ रुपये इनाम दिये।

निशी : निशी का जीवन एक लम्बी काली रात का-सा जीवन था। इसे पढ़ कर हर पाठक महसूस करेगा कि निशी ने उसके हृदय की सबसे अधिक दुःख भरी तार पर उँगली रख दी है।

इसी लेखक की कहानियों के दो संग्रह भी छप चुके हैं। यानी 'मैं जरूर रोऊँगी' और 'पंजाब की कहानियाँ।'

इन पुस्तकों के अलावा बलवन्त सिंह के दूसरे उपन्यास भी हैं जो आपके शहर के हर बड़े दुकानदार से मिल सकते हैं।

प्राप्तिस्थान :

लोक भारती, ५१, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।

सम्पादकीय

पिछले दिनों उर्दू के महाकवि श्री रघुपति सहाय 'फ़िराक़' को साहित्य एकेडमी की ओर से पाँच हज़ार रुपये का पुरुस्कार मिला। यह पुरुस्कार उनकी कविता संग्रह 'गुले नग़मा' पर दिया गया। इस अवसर पर हम इसी संग्रह में से कुछ चुनी हुई कविताएँ इस अंक के उत्तरार्ध में प्रस्तुत कर रहे हैं, इस सिलसिले में मैंने फ़िराक़ साहब का इन्टरव्यू भी लिया, परन्तु उसके फ़ौरन बाद मुझे एक महीने के लिए इलाहाबाद से बाहर जाना पड़ा इसी कारण वह इन्टरव्यू इस अंक में नहीं छप सका। हमें इस बात का खेद है। अब यह इन्टरव्यू बाद के किसी अंक में दिया जायगा।

बार-बार इस बात का जिक्र करना अच्छा तो नहीं लगता लेकिन हम यह कहने पर मजबूर हैं कि हमारे अनेक पाठकों और दूसरे बड़े-बड़े लेखकों ने जिस तरह उर्दू साहित्य का स्वागत किया और अब तक तारीफ़ी ख़त लिख कर हमें बढ़ावा दे रहे हैं उसके लिए हम उन सबके अत्यन्त आभारी हैं।

यह महसूस करके हर्ष होता है कि उर्दू साहित्य अपनी आयु का एक वर्ष पूरा करने जा रहा है इसलिए उर्दू साहित्य का अगला अंक विशेषांक होगा। इसके बारे में विज्ञापन आप और जगह देखेंगे।

स्थापित १९०४

قائم شدہ ۱۹۰۴ء

THE S.C. WORKS
SCW
ALLAHABAD.3

बर्क़ी तेल

BARQI TEL
REGD.
A GENUINE REMEDY FOR CUTS, BURN AND INFLAMATION ETC.
برقی تیل رجسٹرڈ
बर्क़ी तेल
THE S.C. WORKS
ALLAHABAD.3

शारीरिक पीड़ा ज़ख़्म, चोट, वरम
बच्चों की सर्दी, कटने, जलने
इत्यादि में लाभदायक है

برقی تیل
رجسٹرڈ

جسمانی ہر درد
زخم، چوٹ، ورم، بچوں
کے سردی لگنے، کٹنے، جل جانے
اور ہڈیوں کے ٹوٹ جانے میں
بیحد مفید ہے

एस.सी. वर्क्स
रोशन बाग - इलाहाबाद

ایس سی ورکس
روشن باغ - الہ آباد

जे० बी० पुस्तकमाला

साहित्य एकेडमी के पुरस्कार विजेता विख्यात साहित्यकार

फ़िराक़ गोरखपुरी

और दूसरे मशहूर लेखकों की रचनाएँ

१. रूप	: फ़िराक़ की शृंगार रस की अन्यतम रुबाइयाँ	१·००
२. और अंधकार मिट गया	: उर्दू साहित्य के सम्पादक व प्रसिद्ध लेखक श्री बलवन्त सिंह	१·५०
३. उमराव जान अदा	: उर्दू के उपन्यास लेखक मिर्जा रुसवा	१·५०
४. उर्दू कविता	: फ़िराक़ गोरखपुरी द्वारा उर्दू कविता की समालोचना	१·५०
५. कुँअर कोट	: मजनूँ गोरखपुरी का करुणापूर्ण उपन्यास	१·००
६. पहला शराबी	: महात्मा टाल्स्टाय	६२ नये पैसे

आदि का प्राप्ति स्थान :

लोक भारती

१५ ए, महात्मा गाँधी मार्ग

इलाहाबाद—१

हिन्दी पॉकट बुक्स प्रकाशन में नया अध्याय !

प्रतिष्ठित साहित्यकारों की उत्कृष्ट रचनाएँ

आलोक पाकेट बुक्स

की प्रथम भेंट ! !

१. विनोद रस्तोगी	दरका दर्पण : खंडित छाया	उपन्यास
२. अमरकान्त	ललिता	,,
३. हर्षनाथ	भीगा आँचल	,,
४. कमलेश्वर	लौटे हुए मुसाफिर	,,

५. लक्ष्मीनारायण लाल : सं०--पाँच प्रेमकहानियाँ (कहानी संग्रह)

□ मोहन राकेश □ मन्नू भंडारी □ कमलेश्वर
□ वसुदेव □ लक्ष्मी नारायण लाल

६. कृष्ण किशोर श्रीवास्तव : सं०—सात हास्य एकांकी (एकांकी संग्रह)

□ डा० रामकुमार वर्मा □ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' □ सत्येन्द्र शरत्
□ विनोद रस्तोगी □ लक्ष्मीनारायण लाल
□ केशवचन्द्र वर्मा □ कृष्ण किशोर श्रीवास्तव

---

१५ अगस्त के पुनीत पर्व पर प्रकाशित

प्रत्येक का मूल्य : एक रुपया

व्यापारिक नियम तथा आर्डर के लिए लिखिये :

आ लो क पॉ के ट बु क्स

८, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद

असलूब अहमद अंसारी

फ़िराक़ गोरखपुरी

फ़िराक़ की शाएरी की उम्र तक़रीबन पैंतीस साल है। शेर कहने की ये लंबी मुद्दत, एक तेज़ दिमाग़, एक बेचैन रूह, एक हस्सास मिज़ाज की अपने-आप को पाने, अपने विचारों, अपनी भावनाओं के निखारने, अपनी काव्य-शैली के विकास और अपनी आवाज़ के संगीत व सरगम को उभारने की कहानी है। शुरू में उनकी शाएरी के विकास की गति धीमी थी। उनके रुक-रुककर कहने का ये अन्दाज़ ज़ाहिर करता था कि वो आगे चलकर जिन ऊँचाइयों तक उड़ान करने वाले हैं, उसके लिए अभी सिर्फ़ पर तौल रहे हैं। अपने-आप को खोजने और प्रकट करने के लिए, उन्हें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा, वो केवल कला और छन्द की समस्याएँ न थीं, बल्कि अर्थ और विषय संबंधी समस्याएँ थीं। फ़िराक़ की शुरू की शाएरी में कई उर्दू शाएरों का रंग झलक उठता है, जिनमें 'मोमिन', 'मुसहफ़ी' और 'अमीर मीनाई' क़ाबिले-ज़िक्र हैं। वो मीर की शाएरी से भी प्रभावित हुए हैं। ये बात दूसरी है कि फ़िराक़ की शायरी और मीर की शाएरी के भाव-तत्व अलग-अलग हैं और उनकी शाएरी की कई तहें ऐसी हैं जो अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण महाकवि मीर की इश्क़िया शाएरी में भी नहीं मिलतीं। फ़िराक़ की शाएरी में विचारचिंतन, वेदना, तड़प और जीवन पर विश्वास, सारी बातें मिलती हैं। अनेक स्थानों पर, उनकी शायरी में 'डन', 'वर्ड्ज़वर्थ', 'स्वीज़', इन शाएरों का प्रभाव नज़र आता है और ऐसा लगता है कि अपनी काव्य-प्रतिभा के विकास के लिए फ़िराक़ ने इन कवियों की शैली, सामग्री और दृष्टिकोण से लाभ उठाया है। इस दृष्टि से देखिये तो ऐसा मालूम

होता है कि फ़िराक़ के पास (Selective mind) है, जो शहद की मक्खी की तरह घूम-घूम कर फूलों का रस तलाश कर लेता है।

फ़िराक़ ने अपनी शाएरी की भूमिका लिखते समय, जगह-जगह पर अपनी शाएरी की मौलिक धाराओं और प्रेरणाओं की ओर संकेत किये हैं। इन संकेतों द्वारा फ़िराक़ की शाएरी के मिज़ाज और खमीर को समझने में सहायता मिलती है। इस में शक नहीं कि फ़िराक़ ने शुरू ही से उर्दू ज़बान के क्लासिकल शाएरों का अध्ययन बहुत ग़ौर और तवज्जुह से किया था। घर के वातावरण और अपने व्यक्तिगत लगाव के कारण वो उनकी रूह से पूरी तरह परिचित थे। इसके बावजूद वो इस पूरी शाएरी की अनेक विशेष धाराओं के विरुद्ध असन्तोष और विरोध भी अनुभव करते रहे। जब तक फ़िराक़ की इस भावना का विश्लेषण न किया जाए, ग़ज़ल के मैदान में फिराक़ के कारनामे की अहमियत नहीं समझी जा सकती। इसके बिना फ़िराक़ के दिमाग़ की प्रतिक्रियाओं पर प्रकाश डालना भी असंभव है।

पुरानी उर्दू शाएरी के वो कौन-से ऐसे मूल्य हैं, जिनका आदर करने और जिनसे बड़ी हद तक लगाव रखने के बाद भी वो नाता न जोड़ सके। इस सिलसिले में बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। सब से अहम बात तो ये है कि पुराने ग़ज़ल के शाएरों में दो-चार को छोड़कर, सब ही इश्क़ या प्रेम का बड़ा संकुचित अर्थ लेते हैं। एक तरफ़ तो वो प्रेम की भावनाओं या आशिक़ की ज़िन्दगी को एक ठहरी और अचल वस्तु समझते हैं; दूसरी ओर वो अपने प्रेम का नाता जीवन की दूसरी दिलचस्पियों और बड़ी समस्याओं से नहीं जोड़ते जिसके कारण स्वाभाविक रूप से उनके प्रेम की कल्पना में एक तरह की सिकुड़न पैदा हो जाती है। जीवन के विस्तार और उसकी रंगारंगी, उसकी अच्छाई-बुराई, उसके क्रम और विकास, उसके फैलाव और उसकी ऊँचाइयों की ओर ये इश्क़ (प्रेम) कोई रास्ता नहीं दिखाता। लखनऊ के सारे और दिल्ली के भी अधिकांश कवियों के यहाँ इश्क़िया ज़िन्दगी पूरी ज़िन्दगी से कोई विशेष संबंध नहीं रखती। भावनाओं में कहीं-कहीं तीव्रता और सच्चाई के बावजूद छिछलापन, घुटन और छिछली बातें ग़ज़ल की शाएरी के आवश्यक अंग बन गई हैं। प्रेम की संकुचित कल्पना का नतीजा ये निकला है कि ग़ज़ल की शाएरी जो अधिकांश इश्क़ो-मुहब्बत के चारों ओर चक्कर काटती है, उसके विषय गिने-चुने हैं। अक्सर शाएर तो तुकबन्दी ही तक सीमित रह जाते हैं, दूसरे शाएर अगर कुछ उपज लाने की कोशिश भी करते हैं तो ये कोशिश भी अन्त में प्रचलित विचारों और विषयों के उलट-

फेर से आगे नहीं बढ़तीं। आम तौर से कहा जाता है कि दिल्ली के शाएरों के यहाँ भाव की गहराई और तीव्रता पाई जाती है और लखनऊ के शाएर केवल बाहरी चीज़ों की तस्वीर उतारना काफ़ी समझते हैं। पर सिर्फ़ इतना कहना काफ़ी नहीं। खास बात ये है कि उर्दू शाएरी की पुरानी पूँजी में हमें मानव और प्रकृति की एकता का आभास नहीं दिखाई देता और न जीवन पर विश्वास की परछाईं नज़र आती है। इस बात के कारण पतनशील संस्कृति और ईरानी छायावाद की परम्परा में ढूँढ़े जा सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानव और प्रकृति दो अलग-अलग इकाईयाँ हैं, जिनमें कोई परस्पर संबंध नहीं। एक तरह से देखिये तो ये बात भी समझ में आ जाती है। अगर शाएर अपने दिल की दुनिया ही को सब-कुछ समझ बैठे और अपनी वासना और प्रेम की भावनाओं के चारों ओर विविधि प्रकार के सुन्दर जाल बुनता रहे तो ज़ाहिर है संसार से वो संबंध और निकटता का आभास कैसे कर सकता है? जीवन की ट्रेजेडी का सामना करके, अपनी असफलता और हार से वो कोई विश्वास और सहारा किस तरह पा सकता है? इसके दो नतीजे सामने आए; पहली बात ये कि ग़म, दुःख, ईर्ष्या, जलन, घुटन, दुश्मनी आदि इन सारी भावनाओं का चित्रण उर्दू शाएरों का ओढ़ना-बिछौना बनकर रह गया दूसरी बात ये कि आशिक़ और माशूक़ के बीच किसी स्वाभाविक संबंध की कल्पना नहीं की जा सकी।

आम तौर से प्रेम-संबंध का जो ताना-बाना हमें इन शाएरों के यहाँ मिलता है वो बनावटी, अस्वाभाविक और जीवन के प्रधान मूल्यों से मुँह मोड़ने का प्रेरक है।

इस सिलसिले में ये भी नहीं भूलना चाहिये कि अगरचे उर्दू के अधिकांश शाएरों की भावनाओं की तीव्रता, उनकी सच्चाई पर शक नहीं किया जा सकता पर भावनाओं पर एकरंगी, सादगी और बाज़ारूपन का रंग भी चढ़ा हुआ है। पूरी उर्दू शाएरी में सिर्फ़ ग़ालिब की मिसाल ऐसी है, जिनके यहाँ भाव की रंगा-रंगी, तहदारी और विचार की गहराई हमें नज़र आती है। और इसीलिए ये कहना बड़ी हद तक सही है कि ग़ालिब बहुत कुछ पुराने होते हुए भी बहुत-कुछ नए हैं।

चूँकि उर्दू ग़ज़ल की कला फ़ारसी से आई है इसलिए ये बात बहुत आम है कि आम ग़ज़ल कहने वाले शाएर अपनी उपमाओं की तलाश में न तो अपने वातावरण और ज़मीन पर नज़रें जमाते हैं, न देखी-सुनी, जानी-पहचानी बातों को महत्त्व देते हैं; वो पुरानी उपमाओं और अलंकारों में नया रंग अपने प्रत्यक्ष

निरीक्षण की शक्ति से नहीं उभारते बल्कि वो केवल अपनी कल्पना और स्मरण शक्ति का सहारा लेते हैं। उसका नतीजा ये होता है कि वो एक ही बात को तरह-तरह से दुहराते हैं, जिससे कभी-कभी उकताहट महसूस होने लगती है। ऐसा करने से ग़ज़ल की चमक-दमक और मीनाकारी ज़रूर बढ़ गई है, लेकिन ग़ज़ल असलियत और वास्तविकता से दूर हो गई। इन ग़ज़ल के शाएरों ने देश के चाँद और सूरज, यहाँ के आसमान और ज़मीन, यहाँ की मिट्टी और हवा, यहाँ की बहार और खिज़ाँ, यहाँ के फूलों और ज़र्रों से अपनी शाएरी को सजाने के लिए कोई सामग्री नहीं प्राप्त की।

यही वो सारी बातें हैं जिन्हें फ़िराक़ ने अपनी शायरी में क़ुबूल करने से इंकार किया। अब ये सवाल पैदा होता है कि फिर आखिर फ़िराक़ ने ग़ज़ल की दुनिया को फैलाने और बढ़ाने के लिए अपने-आप को किस मानसिक क्रिया से गुज़ारा। जैसा पहले कहा जा चुका है कि फ़िराक़ ने जिन शाएरों का असर क़ुबूल किया उनमें मीर, मुसहफ़ी और ग़ालिब हैं। मीर से उन्होंने भाव की गहराई, शक्ति, दर्द, तड़प, घुलावट, ये सारी चीज़ें लीं। मसहफ़ी से उन्होंने आमोद और आनन्द का आभास पाया; ग़ालिब से उन्होंने विचार और अर्थ की गहराई और भाव की गूढ़ता को उभारने की कला प्राप्त की। अंग्रेज़ी शाएर 'वर्ड्ज़वर्थ' और हिन्दी और संस्कृत के अध्ययन और पाश्चात्य कला और विज्ञान की जानकारी से उन्होंने जीवन, संसार का ज्ञान, प्रकृति से सम्बन्ध और पृथ्वी के रूप और उसकी देन से आनन्द लेना सीखा। फ़ारसी शाएरी से उन्होंने नाज़ुक-खयाली और बारीकी की पहचान सीखी। भारत के पुनः जागरण से उन्होंने ये सबक़ सीखा कि हिन्दुस्तान की शाएरी में हिन्दुस्तान की रूह इस तरह घुल-मिल जाए कि वो यहीं की पैदावार मालूम होने लगे। लेकिन इन सारे प्रभावों को उभारने और सँवारने में विशेष कर स्वयं फ़िराक़ का व्यक्तित्व, उनकी चेतना, संवेदना और उनकी काव्य-प्रतिभा का बहुत बड़ा हाथ रहा है। फ़िराक़ के सामने ये मक़सद था कि प्रेम-भावनाओं के सजीव चित्रण के साथ-साथ किस प्रकार ग़ज़ल को पूरी ज़िन्दगी का आईना बनाया जाए कि शाएरी, ग़ज़ल विचारजनक और अर्थ में गूढ़ अवश्य हो, लेकिन इसके साथ-साथ उसका आधार यथार्थ और अनुभव पर हो, और उसमें हिन्दुस्तान की आत्मा का कम्पन भी सुनाई दे सके।

इस मक़सद को हासिल करने के लिए फ़िराक ने बड़ा रियाज़ किया फिराक़ का एक शेर है :

यही मक़सद हयाते-इश्क़[1] का है।
ज़िन्दगी ज़िन्दगी को पहचाने॥

ये ज़िन्दगी का पहचानना क्या है, जिसे शाएर ने इश्क़ का मक़सद माना है। ये है प्रकृति के असीम फैलाव के सामने आश्चर्य में खो जाने और उसके रहस्य को खोजने और पाने की जिज्ञासा, प्रकृति में लीन हो जाने की आकांक्षा। ये वो सारे गुण हैं जो संसार के महाकाव्यों की पहचान हैं। बात ये है कि महान और अमर कविता केवल काम-अनुभव का विवरण नहीं होती। ये अवश्य होता है कि काम-अनुभव ही वो आधार है, जिस पर पूरी इमारत बनाई जाती है, पर बड़ी शाएरी में इसके साथ-साथ और बहुत कुछ होता है, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

फ़िराक़ की शाएरी में हमें बड़ी-बड़ी इश्क़िया शाएरी की ये सारी अच्छाईयाँ क़दम-क़दम पर नज़र आती हैं। प्रेम के अनुभव पर नज़रें जमाए रखने के बावजूद हमें उनकी शायरी में जीवन और संसार के विषय में एक ऐसी चेतना मिलती है, जो दूसरे शायरों के यहाँ बहुत कम मिलती है। उसकी बहुत बड़ी वजह ये है कि वो केवल आशिक़ या शाएर नहीं हैं बल्कि वो समस्त विश्व की समस्याओं और गुत्थियों से, जो चारों ओर फैली हुई हैं, गहरी जानकारी रखते हैं और वो प्रेम अनुभव के साथ ही नई ज़िन्दगी, नए मूल्यों और नई चेतना की परछाईं भी दिखा देते हैं। ये संसार उनके लिए प्रश्नात्मक भी है और वो उसके सुख-दुःख, उसके आदर्श, उसके इतिहास और उसकी आगामी संभावनाओं से भी परिचित हैं। वो पढ़ने वालों में वही आश्चर्य, जिज्ञासा, आनन्द और ज्ञान पैदा कर देना चाहते हैं जिसमें वह स्वयं अपनी चेतना के कारण हिस्सेदार हैं। वो भाव की आधीनता नहीं स्वीकार करते, न भावनाओं की दी हुई पूँजी को सब-कुछ समझ कर चुप रह जाते हैं, बल्कि इससे अपने चिंतन को और अधिक क्रियाशील बनाने की कोशिश करते हैं। फ़िराक़ की शाएरी न केवल भाव-प्रधान है, न विचार-प्रधान बल्कि ये एक ऐसी आत्मा की कथा है जो भावुक होने के साथ-साथ सचेत भी है। इस शाएरी में कोई पैग़ाम नहीं है, फिर भी ये शायरी दिमाग़ के दरवाज़े खोल देती है। इन अशआर को पढ़िये जिनसे जज़बात और एहसासात की दुनिया के नए क्षितिज सामने आ जाते हैं :

१—प्रेम का जीवन

फ़िराक़ एक हुए जाते हैं, ज़मानो-मकाँ[१]।
तलाशे-दोस्त में मैं भी कहाँ निकल आया ॥

वो जिनके हाल में लव दे उठे ग़मे-फ़रदा[२]।
वही हैं अनजुमने-ज़िन्दगी[३] के चश्मो-चिराग़[४] ॥

ये कारवाने-ज़माना चले ही जाता है।
न खौफ़े-शामे-ग़रीबाँ[५] न, फ़िक्रे-सुब्हे-वतन[६] ॥

रुका है क़ाफ़िलए-ग़म कब एक मंज़िल पर।
कब इंक़िलाब-ज़माने का हमरकाब[७] नहीं ॥

अभी कुछ और हो इंसान का लहू पानी।
अभी हयात[८] के चेहरे पर आबो-ताब नहीं ॥

अभी हर शै से होती है नुमायाँ शाने-इंसानी।
अभी हर चीज़ में महसूस होती है कमी अपनी ॥

हुआ है गरदिशे-दौराँ[९] का एक दौर तमाम।
सुकूने-यास[१०] जो हासिल हुआ मुहब्बत को ॥

रुकी-रुकी सी शबे-मर्ग[११] खत्म पर आई।
वो पव फटी, वो नई ज़िन्दगी नज़र आई ॥

कहीं ज़मानो-मकाँ में है नाम को भी सकूँ।
मगर ये बात मुहब्बत की बात पर आई ॥

हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है।
नई-नई सी है कुछ तेरी रह गुज़र फिर भी ॥

झपक रही हैं ज़मानो-मकाँ की आँखें भी।
मगर है क़ाफ़िला आमाद-ए-सफ़र फिर भी ॥

शबे-फ़िराक़ से आगे है आज मेरी नज़र।
कि कट ही जाएगी ये शामे-बेसहर[१२] फिर भी ॥

१—समय-स्थान २—भविष्य का ग़म ३—संसार की सभा ४—आँख और दीपक ५—परदेस की साँझ ६—घर का सवेरा ७—साथी ८—ज़िन्दगी। ९—समय का चक्र १०—निराशा की शान्ति ११—मौत की रात १२—ऐसी शाम जिसका सवेरा न हो।

ज़िन्दगी क्या है ? आज इसे ऐ दोस्त।
सोच लें और उदास हो जाएँ ॥

हर-एक अबद[१] का मुसाफ़िर, हर-एक खानाबदोश।
सरे-दयारे-मुहब्बत कोई मकाँ न मकीं[२] ॥

अभी जबीने-बशर[२] मुंतज़िर सी हो जैसे।
कि आदमी अभी फ़ितरत का शाहकार नहीं ॥

फ़िराक़ के अशआर में एक पहलू जो बहुत नुमायाँ है, वो है फ़िज़ा का एहसास। वो सही मानों में देखने वाली आँख रखते हैं और उनकी स्वर-कल्पना बहुत रची हुई है। उनके यहाँ फ़िज़ा का संगीत और उसका कम्पन मिलता है। प्रेम-भाव का सजीव चित्रण करते समय फ़िराक़ अपने व्यक्तिगत जीवन और प्रकृति से एक खास रिश्ता महसूस करते हैं। वो अपनी नब्ज़ की रफ़तार पर काएनात (विश्व) और फ़िज़ा की धड़कनों को महसूस करते हैं और उस संगीत को अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे क़ैद कर लेना चाहते हैं। फ़िराक़ की शाएरी में दो बातें खासकर हमें अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं—उनकी सौन्दर्य-भक्ति और उनकी ध्वनिचेतना। इन दो शक्तियों के सहारे वो संसार के रूप और उसके संगीत को बहुत जल्द अपने संवेदना का प्रभावशाली अंग बना लेते हैं। ऐसा लगता है कि वो अपनी शाएरी की दुनिया में सितारों के राज़दार बन गए हैं और अपने कानों से फ़िज़ा की उस थरथराहट को सुन रहे हैं, जो बहुत-कुछ उनके दिल की दुनिया से क़रीब है। यूँ तो हर शाएर किसी न किसी हद तक फ़िज़ा का एहसास रखता है क्योंकि अगर वो चाहे भी तो अपने इर्द-गिर्द की दुनिया से आँखें नहीं बन्द कर सकता। पर ये बात जिस तरह फ़िराक़ के यहाँ मिलती है, किसी और शाएर के यहाँ नहीं मिलती। फ़िराक़ की अक्सर नज्में और ग़ज़लें उनके अपने बयान के अनुसार रात के पिछले हिस्से में लिखी गई हैं, जब पूरी काएनात पर एक रहस्यमय शान्ति और एक सूक्ष्म और मनोहर अवस्था छायी रहती है। ऐसी सूरत में नामुमकिन है कि शायर का ज़ेहन अपनी भावनाओं से अलग होकर एकदम प्रकृति के इस खामोश हुस्न, और मद्धिम संगीत की ओर न आकर्षित हो। शायद यही वजह है कि फ़िराक़ के बहुत-से अशआर में एक लामहदूद (असीम) फ़िज़ा का एहसास होता है। फ़िराक़, 'जोश' की तरह प्रकृति के कवि नहीं, वो खासकर इंसानी तअल्लुक़ात (सम्बन्धों) के शाएर हैं। ये शायद इस बात का नतीजा है कि वो अपने

१—अनन्त प्रेम के संसार में न कोई घर, न रहने वाला २—मनुष्य का मस्तक।

आन्तरिक संगीत को प्रकृति और वातावरण के संगीत से मिला देने में सफल हो गए हैं। ये प्रकृति की चेतनता हमें अंग्रेज़ी शायर वर्ड्ज़वर्थ और बंगाली शायर टैगोर के अमर काव्य में मिलती है। ये सही है इन दोनों शाएरों के यहाँ ये एहसास फ़िराक़ से ज़्यादा गहरा, ज़्यादा रचा हुआ और ज़्यादा अर्थपूर्ण है पर इसमें शक नहीं कि फ़िराक़ ने अपने तौर पर इस कैफ़ियत को महसूस किया है और वो उसे अपने मिज़ाज में पूरी तरह समाने में सफल हो गए हैं। उनकी ये प्रवृत्ति इनकी प्रेम-भावना से मिलकर एक नए रंग में ज़ाहिर हुई है। उसके पीछे एक बहुत बड़ी तहज़ीब है, जिसने उनके नग़मों को सींचा है और ये कहना कुछ ग़लत न होगा कि उर्दू शायरी या उर्दू ग़ज़ल में फ़िराक़ से पहले इस नग़मे की गूँज नहीं सुनाई देती।

गर्दूं[1] शरारे बर्के दिले बेक़रार[2] देख।
जिस से ये तेरी तारों भरी रात रात है॥

तमाम खस्तगि-ओ-माँदगी[3] है आलमे हिज्र[4]।
थके-थके से ये तारे, थकी-थकी सी ये रात॥

अब दौरे आसमाँ है, न दौरे-हयात है।
ऐ दर्दे-हिज्र तू ही बता कितनी रात है॥

मैं आसमाने-मुहब्बत पे रुखसते-शब[5] हूँ।
तेरा खयाल कोई डूबता सितारा है॥

सितारे खो गए हैं रूप के संगीत में अक्सर।
कहाँ साज़े-शबे-महताब[6] में है नग़मगी तेरी॥

बहुत दिनों में मुहब्बत को ये हुआ मालूम।
जो तेरे हिज्र में गुज़री वो रात रात हुई॥

वो रात गोश-बर-आवाज़ थे[7] जब अनुजुमो-मह[8]।
तेरी निगाह कहानी सी जैसे कह जाए॥

सितारे जागते हैं, रात लट छिटकाए सोती है।
दबे पाँव ये किसने आके ख्वाबे ज़िन्दगी बदला।

१—आसमान २—बेचैन दिल की बिजली की चिनगारियाँ ३—थकान ४—वियोग की अवस्था ५ रात की विदाई ६—चाँदनी रात का साज़ ७—कान लगाए ८—चाँद की सभा।

फ़िराक़ ने प्रेम के इन विषयों की ओर, जो उनकी शाएरी का केन्द्र और आधार हैं, खुद ही अपने एक शेर में संकेत किया है। वो शेर ये है :

एक जानी हुई दुनिया, एक आलमे हैरत है।
इन दोनों का मिल जाना, दुनियाए मुहब्बत है।।

फ़िराक़ उसी सिलसिले के शाएर हैं जिसके मीर, मोमिन, ग़ालिब, आतश, मुसहफ़ी, हसरत और जिगर हैं। उन्होंने भी अपनी शाएरी की दुनिया को उन्हीं विषयों से सजाया है, जो ग़ज़ल के केन्द्रीय विषय कहे जा सकते हैं। पर फ़िराक़ ने उन विषयों को अपने विशेष दृष्टिकोण से देखा है और हुस्नो-इश्क़ की मनोस्थितियों को अपने व्यक्तिगत अनुभव की रोशनी में पढ़ने की कोशिश की है जिसकी वजह से उनकी अपनी आवाज़ और लै बन गई है।

मर्द और औरत के संबंध के जो चित्र हमें फ़िराक़ की रुबाइयों और ग़ज़लों में मिलते हैं वो बड़े अनूठे और अनुपम हैं। ग़ज़ल और रुबाई इन दोनों के शाएर अलग-अलग नहीं बल्कि एक ही शाएर के दो रुख़ हैं जिनमें कोई परस्पर विरोध नहीं। इस बात को यूँ भी कहा जा सकता है कि जीवन और संसार का जो सम्पूर्ण ज्ञान फ़िराक़ रखते हैं, जब वो पूरी तरह कला के एक रूप में नहीं आ सका, तब उसने अपने लिये दो सूरतें एख़्तयार कर लीं। फ़िराक़ इश्क़िया तजर्बों को जितनी मासूमियत, सफ़ाई, सरलता और पवित्रता के साथ बयान करते हैं, वो गिने-चुने शाएरों के यहाँ मिल सकती है। ये नतीजा है समस्त जीवन को काम-भावना सहित बिना किसी उलझन के स्वीकार करने का और जिंसी और इश्क़िया तअल्लुकात को पूरी सच्चाई और पवित्रता के साथ बरतने का। इसे बरतने में वो जज़्बाती घुटन नज़र नहीं आती जो लखनऊ और दिल्ली के शाएरों के यहाँ पाई जाती है। फ़िराक़ का शेर है :

ज़रा विसाल के बाद आईना तो देख सही।
तेरे शबाब की दोशीज़गी[1] निखर आई।।

इस शेर पर फ़िराक़ की बड़ी ले-दे की गई है, पर मेरा ख़याल है कि उर्दू के बहुत कम अशआर ऐसे होंगे जिसने उन्हीं पाबन्दियों के अन्दर जिसने इतनी सफ़ाई और इतने मज़े के साथ ऐसी बात कही हो। फ़िराक़ बुनियादी तौर पर प्रेम, शारीरिक संबंध और रूप की मनोस्थितियों के कवि हैं और मेरा ख़याल है ये अछूता रंग उनके यहाँ हिन्दी और संस्कृत के अध्ययन से आया है। जिस तरह फ़िराक़ ने धरती की महानता, पवित्रता, विश्व से निकटता की भावना उसके संगीत

१—कुआँरापन

और रस का बोध अपने इस अध्ययन से पाया है, उसी तरह ये भी अनुमान किया जा सकता है कि पुरुष और स्त्री के स्वाभाविक संबंध की अपनाइयत, अचानकपन और जाने-पहचाने तजर्बों का बयान, ये सब चीज़ें भी उन्होंने वहीं से पाईं। लेकिन इन प्रभावों को ग्रहण करना और अपने अन्दर समोना, उनके अपने व्यक्तित्व के क्रियाशील रचनात्मक तत्वों के सहयोग के बग़ैर संभव न होता। इसीलिये फ़िराक़ की ग़ज़लों को पढ़ते वक़्त मैंने हमेशा महसूस किया है कि उनकी फ़िज़ा आम ग़ज़लों से बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। फ़िराक़ की ग़ज़लें उनकी अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से बोझल हैं। इस साज़ के हर तार से उनकी आत्मा की वेदना, तड़प, अमोद-प्रमोद, कम्पन, व्यग्रता, उसका संगीत, उसकी चेतना, ज्ञान, इन सब की किरणें फूट-फूट कर निकलती हैं। फ़िराक़ ने ग़ज़ल की पुरानी शैली में नए तजर्बे, नया ज़ोरे-बयान और लबो-लहजा देकर ग़ज़ल की दुनिया को एक नई दिशा दी है। फ़िराक़ के चन्द शेर इसकी मिसाल में पेश किये जाते हैं :

गुलों की जलवागाहे-नाज़[१] में न ढूँढ मुझे।
मैं नक़्श था मिटा दिया, चिराग़ था बुझा दिया॥

ज़ुलमतो-नूर में कुछ भी न मुहब्बत को मिला।
आज तक एक धुँधलके का समाँ है कि जो था॥

हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुज़र फिर भी॥

जहाँ भी जुस्तजुए-दोस्त[४] में ठहर जाते।
यक़ीन जान कि मंज़िल करीब ही होती॥

तू एक था मेरे अशआर में हज़ार हुआ।
इस एक चिराग़ से कितने चिराग़ जल उठे॥
तेरा विसाल बड़ी चीज़ है मगर ऐ दोस्त।
विसाल को मेरी दुनियाए आर्ज़ू[३] न बना॥

दिल की गिंती न यगानों में न बेगानों में।
लेकिन उस जलवागहे-नाज़[४] से उठता भी नहीं॥

रगों में गर्दिशे[५]-ख़ूँ है कि लै है नग़में की।
वो ज़िरो-बम[६] का है आलम कि जिस्म गाता है॥

१—फूलों की सुन्दर सभा। २—दोस्त की खोज ३—आशा का संसार। ४—सुन्दर सभा ५—रक्त की गति ६—उतार-चढ़ाव।

एक फ़ुसूँ-सामाँ[1] निगाहे-आश्ना[2] की देर थी।
इस भरी दुनिया में हम तनहा नज़र आने लगे॥

फ़िज़ा तबस्सुमे-सुब्हे-बहार[3] थी लेकिन।
पहुँचके मंज़िले-जानाँ[4] प आँख भर आई॥

साफ़ लौ दे उठी उदास फ़िज़ा।
मुस्कराहट जो तेरी याद आई॥

हो गई कायनात रंगारंग।
वो गुलाबी नज़र ने छलकाई॥

कुछ इन्तज़ार का उनवान तो बदल जाता।
जो ग़म की शाम हुई थी तो सुब्ह भी होती॥

अजब क्या खोए-खोए से जो रहते हैं तेरे आगे॥
हमारे दरमेयाँ ऐ दोस्त लाखों ख्वाब हाएल हैं॥

सोहबते-शब की दास्ताँ इस में सिमट के आ गई।
पिछले पहर को बज़्म में शमआ की थरथरी तो देख॥

तुझे तो हाथ लगाया है बारहा लेकिन।
तेरे खयाल को छूते हुए मैं डरता हूँ॥

फ़िराक़ की शाएरी के मिज़ाज का अगर कोई अन्दाज़ा लगाना चाहे तो उसे फ़िराक़ की उपमाओं की ओर तवज्जुह करना चाहिये। उपमाओं के चुनाव से शाएर की मानसिक प्रतिक्रिया का पता चलता है। फ़िराक़ जब प्रेम की मनो-स्थतियों का चित्रण करते हैं, या महबूब की ख़ूबसूरती, चेहरे, क़द, नाज़ो-अदा की कोई तस्वीर दिखाते हैं तो अपने खास और अछूते अन्दाज़ में वो उन ऊपमाओं या अलंकारों को इस्तेमाल नहीं करते या उनसे बचने की कोशिश करते हैं, जो दूसरे शाएरों का तकिया-कलाम बन गई हैं। वो अपने प्रत्यक्ष अनुभव और निरीक्षण पर भरोसा करना उचित समझते हैं। फ़िराक़ ने बाज़ ऐसी उपमाएँ इस्तेमाल की हैं जो जानी पहेचानी होने के बावजूद नई मालूम होती हैं। अक्सर ऐसी हैं जो इससे पहले किसी उर्दू शाएर ने इस्तेमाल नहीं कीं। जिनके इस्तेमाल में एक ख़ास मिठास, ख़ूबसूरती और एक खास ताज़गी मालूम होती है। फ़िराक़

१—जादू भरी २—दोस्त की नज़र ३—बाहर की सुबह की मुस्कराहट ४—दोस्त की मंज़िल।

अपने इस इरादे में सफल हुए हैं कि उनकी शाएरी में हिन्दुस्तान की फ़िज़ा की थरथराहट महसूस हो। उन्होंने हिन्दू देवमाला से बहुत-कुछ पाया है। हिन्दी शाएरी में चाहे वो कल्पना की उड़ान, नाज़ुक खयाली और बारीकी पैदा करने का वो गुण न हो जो फ़ारसी शाएरी के माथे का झूमर है, पर उसमें जो पृथ्वी से लगाव, जो रस, संगीत, सरलता और मस्ती है वो यक़ीनन एक अनमोल मोती है, और फ़िराक़ ने इन सब तत्वों को ग़ज़ल में समोने की कोशिश की है। फ़िराक़ की शाएरी आला दर्जे के एहसास की शायरी है। उन्होंने इस देवी के सिंगार के लिये जो सामान जमा किया है—वो है हिन्दुस्तान की ही सरज़मीन का। फ़िराक़ की शाएरी की फ़िज़ा कुछ ऐसी है जैसे 'शकुन्तला' की फ़िज़ा। फ़िराक़ का ये कारनामा बहुत अहम है जो अनुभव की दृष्टि से ही सिर्फ़ सही न हो बल्कि जहाँ तक हमारे दिमाग़ की पहुँच भी हो। फ़िराक़ की उपमाओं के आकर्षण का रहस्य कुछ विशेष गुणों के एक साथ जमा हो जाने में है। पहली बात, उनकी सौन्दर्य-चेतना, दूसरी बात उनकी सम्पन्न कल्पना, तीसरी पृथ्वी से उनका प्रेम, चौथे उनकी प्रेम की कल्पना, पाँचवें हिन्दी और संस्कृत का प्रभाव, छटे निरीक्षण और अनुभव में बारीकी और नई चीज़ों की पहचान। इन विभिन्न तत्वों से मिलकर वो फ़िज़ा बनी है जिसे फ़िराक़ 'हिन्दुस्तानियत' कहते हैं, जिसे उन्होंने अपनी शाएरी में समोने की कोशिश की है। चन्द मिसालें देखिये :

खयाले गेसुए जानाँ[१] की वसअतें[२] मत पूछ।
कि जैसे फैलता जाता हो शाम का साया॥

दिलों को तेरे तबस्सुम[३] की याद यूँ आई।
कि जगमगा उठें जिस तरह मंदिरों में चिराग़॥

जो छुप के तारों की आँखों से पाँव धरता है।
उसी के नक्शे-कफ़े-पा[४] से जल उठे हैं चिराग़॥

दिलों में दाग़े-मुहब्बत का अब ये आलम है।
कि जैसे नींद में डूबे हों पिछली रात चिराग़॥

रंगे अमवाज़े रक़्से सुब्हे-बहार[५]।
रूप देते हैं साज़ का आलम॥

वो पिछली शब निगहे-नरगिसे खुमार आलूद।
कि जैसे नींद में डूबी हुई हो चन्द्र-किरन॥

१—महबूब के बालों का खयाल २—फैलाव ३—मुस्कराहट ४—पैर का निशान ५—बहार की सुबह की लहरों का नृत्य ६—नींद भरी नरगिस की नज़र।

ये तेरा शोल-ए-आवाज़ है कि दीपक राग।
क़रीबो-दूर चिराग़ आज हो गए रौशन॥
वो नौ बहारे-नाज़ उठा, फ़िज़ाए सुब्ह जाग उठी।
वो ताज़गी, वो हुस्न, वो निखार, वो सबाहतें[१]॥

रूप का रह-रह के झलक मारना।
फूलों से जिस तरह उड़ें तितलियाँ॥
करवटें ले उफ़क़ प जैसे सुब्ह।
कोई दोशीज़ा रसमसाती थी॥

हुस्न की सबाहत को क्या बताइये जैसे।
चाँदनी मनाज़िर पर पिछली रात ढलती है॥

रंगे-रुख खिला इस तर्ह आँच इश्क़ की खाकर।
फूल जिस तरह निखरे सूखने से शबनम के॥
सैकड़ों क़ौस-क़ज़ह जिस तरह लहरों में नहाएँ।
सुब्ह की वो नग़मगी जैसे सितारे मिल के गाएँ।

आ गई बादे-बहारी[३] की लचक रफ़्तार में।
मौजे-दरिया का तबस्सुम बस गया रुखसार में॥
काश कि झुटपुटे में यूँ तेरा खयाल दिल पै छाए।
जैसे जबीने-चर्ख़[४] पर कोई सितारा मुस्कराए॥

कहीं दामाने-बादे-सुब्ह[५] भी आलूदा[६] होता है।
बचा लेता है हुस्ने-नर्म खुद दोशीज़गी अपनी॥

जो होंटों तक तेरे महदूद रहती है, सहर होते।
उफ़क़ पर दूर तक वो मुस्कराहट फैले जाती है॥
तेरे खयाल की रंगीनियों का क्या कहना।
फ़िज़ा में जैसे गुलाबी से कोई छलकाए॥

बाग़े-जन्नत प घटा जैसे बरस के खुल जाए।
सोंधी-सोंधी तेरी खुशबूए-बदन क्या कहना॥

जगमगाहट ये जबीं की है कि पौ फटती है।
मुस्कराहट है तेरी सुब्हे-चमन क्या कहना॥

१—सुन्दरता ताज़गी २—धनुष ३—पवन ।४—आकाश का मस्तक ५—सुबह की हवा का दामन ६—मैला ७—सीमित।

ज़ुल्फ़े शबगूँ[1] की चमक पैकरे-सीमीं[2] की दमक ।
दीप माला है सरे गंगो-जमन क्या कहना ॥

जहाँ में थी बस एक अफ़वाह तेरे जलवों की ।
चिराग़े दैरो-हरम झिलमिलाए हैं क्या-क्या ॥

तारों के क़ुलूब में जैसे धड़कनें ।
रात आप की अदा-अदा को देखा ॥

जैसे निशात मुस्कराए जैसे सबाह थरथराए,
जैसे सितारे मिल के गाएँ हुस्न की नग़मगी तो देख ॥

जैसे सुकून थरथराए जैसे सुकूत कुछ सुनाए ।
जैसे सुगंध मुस्कराए हुस्न की तर्फ़गी तो देख ॥

किसी की आँख में मिलते हैं दोनों वक़्त फ़िराक़,
हम एक निगाह में शामो-सहर को देखते हैं ।

जो महकी छाँव में नग़मों की पंखड़ी से बने ।
वही सुना है तेरे हुस्न का नशेमन है ॥

निगाहे-गोश की पुरकैफ़ तश्नगी को न पूछ ।
एक अदखिली सी कली, अधसुना सा राग है तू ॥

फ़िराक़ भारत के पुनः जागरण के प्रमुख प्रतिनिधि हैं । उनका काफ़ी कहना और अच्छा कहना उनकी रचनात्मक शक्ति का प्रमाण है । उनकी कल्पना में जो कोमलता और रंगीनी है, उनके चिंतन में जो गहराई और शक्ति है, उनके उद्गारों में जो प्रौढ़ता और विस्तार है वो उनके समकालीन किसी कवि के यहाँ नहीं दिखायी देती । उन्होंने उर्दू ग़ज़ल को जो मूल्य दिये हैं, वो नए और अहम हैं और इस तरह से उन्होंने उर्दू ग़ज़ल का रुख़ मोड़ दिया है । इस बुनियाद पर अगर उन्हें मौजूदा उर्दू ग़ज़ल में एक बड़ी और महत्त्वपूर्ण शक्ति मान लिया जाए तो शायद कुछ बेजा न होगा ।

———

१—रात के रंग २—चाँदी-सा बदन ।

ख़िज़ाँ का गीत

ए० हमीद

"मेरी मुहब्बत उस घास की तरह है, जो ऊँचे पहाड़ों
की गहरी घाटियों में उगती है।
और जो दिन-ब-दिन बढ़ती चली जाती है मगर
जिसका किसी को पता नहीं होता।"

—एक जापानी गीत

"हमारा फ़ौजी रेडियो स्टेशन ओकायामा शहर से बाहर था," एहसान ने पाइप सुलगाते हुए कहा।

कमरे में ताज़ा अँग्रेज़ी तम्बाकू की धीमी-धीमी खुशबू फैल गई। ये कमरा क़स्बे में उनकी अपनी हवेली के पिछवाड़े नहर के क़रीब ही था। नहर खुश्क थी और उसमें दरख़्तों पर से गिरे हुए पत्तों को बकरियाँ चर रही थीं। पतझड़ का चल-चलाव था। आसमान को फीके और उदास बादलों ने ढाँप रखा था। हवा बन्द थी और खुली खिड़की में से अमरूदों और नाखों का बाग दिखाई दे रहा था, जो उजड़ चुका था और जहाँ पर बचे-खुचे पत्तों की रंगत गुलाबी हो रही थी। हम आराम-कुरसियों पर लेटे हुए थे। हमारे पास ही रूसी तर्ज़ का छोटा समावर पड़ा था, जिसमें मद्धिम आँच पर चाय के लिए पानी गरम हो रहा था। मेरा दोस्त पाइप का धुआँ छोड़ते हुए बोला, "मैं जिस जापानी लड़की का क़िस्सा बयान करने लगा हूँ उसका असली नाम 'शी-ज़ोको' था, लेकिन उसके गाल ख़ूबसूरत थे और हँसते वक़्त वहाँ उससे ज़्यादा ख़ूबसूरत गढ़े पड़ जाते थे, इसलिए मैं उसे 'डिम्पिल्ज़' और बाद में सिर्फ़ 'डिम्पिल' कहा करता था।

तो मैं तुमसे कह रहा था कि हमारा रेडियो स्टेशन ओकायामा शहर से बाहर था। लम्बी चौड़ी सड़कों, खूबसूरत ऊँची-ऊँची पत्थर की इमारतों और हरे-भरे बाग़ों वाला ये शहर टोकियो के बाद जापान का तीसरा या चौथा शहर है। रेडियो स्टेशन की इमारत के इर्द-गिर्द चेरी, सनोबर और शहतूत के दरख्तों के झुरमुट थे। उनके बीचों-बीच दरख्तों को काटकर एक छोटी-सी सड़क बना दी गई थी जो हमें शहर से मिलाती थी।

जापान लड़ाई हार चुका था, और इस रेडियो स्टेशन से अमरीकी विजयी सेना की उदारता, इन्साफ़पसन्दी और लोकमित्रता के गुण गाए जाते थे। हमारे दफ़तर के स्टाफ़ में चार-पाँच आदमी थे; एक जापानी अनुवादक, एक चपरासी, दो हवलदार कल्र्क 'मैं' एक हमारा आफ़िसर, कमांडिंग आफ़िसर जिसका असली नाम मैं नहीं बताऊँगा। यूँ समझ लो हम उसे 'बिन ग़ाज़ी' कहकर पुकारा करते थे। मेजर बिन ग़ाज़ी झेलम का रहने वाला, एक सिपाही क़िस्म का आदमी था, जिसे 'आराकान के घेरे' में किसी अंग्रेज़ अफ़सर की जान बचाने के इनाम में 'मेजरी' मिल गई थी। उसकी उम्र चालीस से कुछ ऊपर थी, लेकिन सुर्ख़ रंगत, लम्बे क़द, चौड़े कंधों और हर वक़्त मुस्कराते रहने की वजह से वो ख्वाह-मख्वाह नौजवान मालूम होता था। उसे पीरी-फ़क़ीरी से भी लगाव था। दफ़तर में सारा दिन 'सी-हर्फ़ी अल्लाह दित्ता' पढ़ने और मुलतानी काफ़ियों के रेकार्ड सुनने के सिवा उसे कोई काम न होता था। प्रोपैगण्डा और पत्रकारिता की उसे कोई शुद-बुध न थी। जाने वो क्योंकर ब्राडकास्टिंग में ढकेल दिया गया था। मैं चूँकि इससे पहले भी लड़ाई के दिनों में सिंगापुर और रंगून से फ़ौजी प्रोग्राम कर चुका था, और इसके साथ ही मुझे कुछ अखबारी ज़िन्दगी का भी तजर्बा था इसलिए मेजर बिन-ग़ाज़ी ने मौक़े की नज़ाकत देखकर ब्राडकास्टिंग का सारा काम मुझी को सौंप दिया था। उसे इस बात का पूरा एहसास था कि लेफ़्टेनेंट 'एहसान' के बग़ैर प्रोग्राम का जारी रहना तक़रीबन नामुमकिन है इसलिए उसे मेरा बड़ा खयाल रहता और उसने मुझे अपना छोटा भाई बना लिया था। अगरचे मुझे बड़े भाई की बिलकुल ज़रूरत न थी। मैं अपना काम ड्यूटी समझकर अदा कर रहा था। इसके साथ ही मुझे बिन गाजी से ज़र्रा बराबर भी दिलचस्पी नहीं थी। एक दिन उसने मुझे हफ़ते भर का प्रोग्राम टाइप करते देखा तो बोला, 'अरे, ये काम भी तुम खुद ही करते हो?'

'हवालदार नायर छुट्टी पर है।'

मेजर बिन ग़ाज़ी ने अपनी आदत के अनुसार लम्बी नाक सिकोड़कर

दो-तीन बार 'सों-सों' किया और बोला, 'इसका मतलब है कि एक एक्स्ट्रा टाइपिस्ट भी होना चाहिए।........बहुत अच्छा, कल ही इसका भी बन्दोबस्त हो जायगा।'

'अरे हाँ, याद आया, पिछले दिनों एक लड़की मेरे घर आई थी, उसे नौकरी की ज़रूरत थी। वो टाइप करना भी जानती है। मेरे खयाल में उसे बुला लिया जाय। तुम्हारा का खयाल है?'

'जनाब मुझे इससे कोई दिल चस्पी नहीं। आप जिसे चाहें बुला लें।'

मेजर बिन ग़ाज़ी ने हँसते हुए नाक सिकोड़ी, 'सों-सों—चुनजी भला दिलचस्पी कैसे न हो।'

"दूसरे रोज़ मैं दफ़तर आया तो मेजर बिन ग़ाज़ी के पास दुबली-पतली जापानी लड़की बैठी थी। मुझे देखते ही वो उठी। घुटनों पर दोनों हाथ रखे और झुककर बोली, 'गुड मारनी, सर।'

"मेजर बिन ग़ाज़ी छोटी-छोटी मूँछों पर उँगली फेरते हुए मुस्करा रहा था।

"—देखो चन जी, ये हैं मिस शीज़ोको यानी तुम्हारी नई टाइपिस्ट, और मैंने इसे अपनी बेटी बना लिया है।

"बिन ग़ाज़ी मिस शीज़ोको के कन्धों पर हाथ फेरने लगा। लड़की शर्मा कर दोहरी हो गई। उसका मुलायम, बादामी रंग के बालों वाला सर झुक गया और ज़र्द चेहरे पर हया की लाली दौड़ गई। बिन ग़ाज़ी, उसके बालों को सह-लाते हुए मुस्करा रहा था और उसके गोल-गोल माथे के चौखटे में लम्बी सिल-वटें 'ख़तरा ११००० वोल्ट' के लाल अक्षर बना रही थीं। उसी दिन डिम्पिल नौकर रख ली गई। दूसरे दिन डिम्पिल दफ़तर आई तो उसका लिबास पहले से ज़्यादा ख़ूबसूरत था। ज़र्द रंग के फूलदार साए पर हलके रंग का ऊनी स्वीटर और उस पर सफ़ेद रंग का रेशमी मफ़लर, डिम्पिल का ज़र्द रंग, इन शोख़ रंगों से मिलकर ज़्यादा शोख़ हो रहा था। दरवाज़े पर ही खड़े होकर उसने दोनों हथेलियाँ घुटनों पर रखीं और झुक गई, 'गुड मारनी, सर।'

"मेजर बिन ग़ाज़ी हज़ार साल पहले की भद्दी चित्रकारी के कुछ नमूने मेज़ पर फैलाए उन पर झुका हुआ था। डिम्पिल की बारीक और संगीत भरी आवाज़ पर उसने चौंककर सर उठाया और उसके गोल-गोल माथे पर '११००० वोल्ट' का ख़तरा उभर आया।"

'अल्लाह, मेरी प्यारी-प्यारी बच्ची आ गई।'

"सुबह ही से प्यारी-प्यारी बच्ची के लिए एक छोटी मेज़ और कुरसी का बन्दोवस्त कर दिया गया था। बिन ग़ाज़ी अपनी बच्ची की कमर में बाज़ू डाले उसे मेज़ के क़रीब ले आया।

'मेरी बच्ची, आज से यहाँ बैठेगी।'

"डिम्पिल कुरसी पर बैठ गई। बिन ग़ाज़ी मेज़ पर टाइप की मशीन रखवा-कर मेरी तरफ़ मुड़ा।

'चुन जी कोई काम हो तो उसे दे दो।'

"मैंने प्रोग्रेसिव रिपोर्ट निकालकर उसे पकड़ा दी—इसकी छः कापियाँ होंगी।

"डिम्पिल ने रिपोर्ट को अपने नन्हे-से हाथों में लेकर पढ़ा और फिर मशीन पर काग़ज चढ़ाकर टाइप करने लगी।

"टिक....टिक....टिक....टिक।

"उसकी रफ़तार मद्धिम थी। मालूम होता था वो अभी मश्क़ कर रही थी। और महज़ हालात की नज़ाकत ने उसे जल्दी नौकरी करने पर मजबूर कर दिया है। हमारे यहाँ की तरह जापान में भी हालात की नज़ाकत बहुत पाई जाती है। अक्सर ये नज़ाकतें, इतनी नाज़ुक हो जाती हैं कि मासूम ग़रीब लड़-कियों को न सिर्फ़ नौकरी बल्कि कभी-कभी अपना शरीर बेचने पर भी मजबूर कर देती हैं। बिन ग़ाज़ी ने डिम्पिल की छोटी-छोटी उँगलियों को देखा, जो रुक-रुककर चल रही थीं। मगर अब वो क्या कर सकता था। उसने उस लड़की को अपनी बेटी बना लिया था और अगर डिम्पिल ज़्यादा टाइप नहीं कर सकती थी तो क्या हुआ, वो मुस्करा तो सकती थी। जब वो मुस्कराती तो उसके मुलायम, गोल रुखसारों में नन्हे-नन्हे गढ़े पड़ जाते थे, जो उसके बाप को बड़े पसन्द थे। मेजर बिन ग़ाज़ी ने हँसते हुए मेरी तरफ़ देखा और धीरे से सर हिला दिया, जैसे कह रहा हो, 'कोई बात नहीं, चुन जी, धीरे-धीरे सीख जाएगी।'

"मेरे दफ़तर में डिम्पिल की अहमियत हवालदार क्लर्कों ऐसी थी; जिनका काम दफ़तर वक़्त पर आना और वक़्त पर चले जाना था। डिम्पिल बिला नाग़ा ठीक वक़्त पर दफ़तर के दरवाज़े में नज़र आती, झुककर सलाम करती और छोटे-छोटे क़दम उठाती, अपनी मेज़ पर जा बैठती। दिन-भर ख़ामोशी और कभी-कभी दफ़तरी बातचीत के साथ वो अपने काम में लगी रहती। पाँच बजे शाम को झुककर सलाम करती, छोटे-छोटे क़दम उठाती दफ़तर से बाहर निकल जाती। दफ़तर के काम के सिवा वो किसी से बात न करती। डिम्पिल का मौजूद होना अगर

मेरे लिए कोई खास अहमियत न रखता था तो डिम्पिल ने भी कभी मुझसे खुल-कर बात करने की ज़रूरत महसूस न की थी। पर मेजर बिन ग़ाज़ी दिन में तीन-चार बार उसके नर्म-नर्म बालों को सहलाना और प्यार से पीठ थपथपाना कभी न भूलता। अपने बालों और पीठ पर 'हलो' के हाथ का स्पर्श महसूस करते ही पीठ के चेहरे का रंग बदल जाता और वो अपने कन्धे सिकोड़कर इकट्ठी-सी हो जाती। मैं ये जानता था कि डिम्पिल को अपने बाप की ये हरकत बिलकुल नापसन्द है लेकिन मैंने बिन ग़ाज़ी से कभी कुछ न कहा था। फिर भी उस वक़्त मुझे डिम्पिल के साथ हमदर्दी-सी हो जाती थी। डिम्पिल के मामले में ये हमदर्दी का एहसास कोई अनोखी और रहस्यमय बात न थी। जापान के उस बहुत बड़े औद्योगिक नगर के ग़रीब मुहल्लों और घनी आबादी की पेचदार गलियों से गुज़रते हुए लकड़ी और बाँस के पिचके हुए मकानों को घुटी-घुटी फ़िज़ा में लड़ती झगड़ती औरतों और मुँह बिसोरते ज़र्दरू गन्दे बच्चों को देखकर ये एहसास मेरे दिल में कई बार जन्म ले चुका था, और मैं उसे हर बार दबा दिया करता था। हम-दर्दी के इस एहसास में हिस्सेदार हमारे दोनों मद्रासी क्लर्क भी थे, जिन्हें रोटी की तलाश चुम्बक की तरह खींचती हुई वतन से हज़ारों मील दूर अजनबी लोगों में ले आई थी और जिनके कमज़ोर, काले और उदास चेहरों पर हर वक़्त इस हज़ारों मील लम्बी दीवार का साया रहता था, जो उनके वतन और ओकायामा के बीच खिंची हुई थी। रोज़ी की दीवार, भूक की दीवार! इस दीवार के साये में वो दोनों क्लर्क थे, डिम्पिल थी, हमारा बूढ़ा जापानी अनुवादक और ओका-यामा के ग़रीब मुहल्ले थे।

"एक महीना चुपचाप गुज़र गया। इस दौरान में डिम्पिल किसी से घुल-मिल न सकी। मेजर बिन ग़ाज़ी उसे कई चीज़ें उपहार में दे चुका था, जिन्हें लाख इन्कार करने के बावजूद वो क़ुबूल करने पर मजबूर हो गई थी। मगर बिन ग़ाज़ी के हाथ डिम्पिल के कन्धों से आगे न बढ़ पाये थे, बल्कि डिम्पिल की उदासीनता और कभी-कभी हल्की-सी बचाव की कोशिश ने, उसे बाप की मुहब्बत-भरी थपकियों से भी महरूम कर दिया था। मेरे लिए डिम्पिल के चरित्र का यह मज़बूत पहलू, ध्यान देने योग्य और दिलचस्पी का कारण था। मुझे बिन ग़ाज़ी नापसन्द था और नापसन्दगी की यही लहर डिम्पिल के दिल में भी उभरते देखकर मैं अपने-आप डिम्पिल के क़रीब पहुँच गया था। शायद इस नज़दीकी और लगाव को डिम्पिल भी महसूस करने लगी थी। एक रोज़ जब कि नवम्बर की नीलाहट लिए दोपहर रोशन और चमकीली थी, मैं कैनटीन से बिस्कुट और

चाक्लेट लेकर दफ़तर आया। डिम्पिल अपनी आदत के अनुसार काम में मसरूफ़ थी। चाक्लेट मैंने दफ़तर में बाँट दिये। एक स्टिक डिम्पिल को भी दी। उसने शर्माकर, मुस्कराते हुए, स्टिक लेकर मेज़ की दराज़ में रख ली, और कोई शुक्रिया वग़ैरा अदा न किया। मैंने सोचा, लड़की गँवार है।

'जैसा कि तुम जानते हो, मुझे बेमक़सद सैर-सपाटों से कभी लगाव नहीं रहा। चुनानचे ओकायामा को सड़कों और बाग़ों के चक्कर लगाने के बजाय मैं छुट्टी के बाद भी दफ़तर में ही बैठा, किताबें और मैगज़ीन वग़ैरा पढ़ता रहता था। अक्सर डिम्पिल भी वहीं रुक जाती, और घंटा आध-घंटा टाइप की मश्क़ करती रहती; जिसकी मैंने उसे इजाज़त दे रखी थी। डिम्पिल को चाक्लेट देने के बाद दूसरे दिन जबकि हम दफ़तर में तक़रीबन अकेले थे, वो कुरसी पीछे खिसकाकर उठी और मेरे क़रीब आई और सुर्ख़ रंग का छोटा-सा डिब्बा मेरी मेज़ पर रखकर वापस चली गई। मैंने किताब बन्द कर दी।''

'ये क्या है, शीज़ो।'

'ये आपके चाक्लेट का शुक्रिया है।'

'अरे !'

''मैंने जल्दी से डिब्बा खोला। अन्दर कपड़े की खूबसूरत गुड़िया लेटी, नीली आँखों से मुझे तक रही थी। इस क़िस्म की गुड़िया तुमने कभी न कभी जरूर किसी कार के पिछले शीशे पर झूलती देखी होगी। मुझे हँसी आ गई।''

'मैं बच्चा नहीं हूँ, शीज़ो।'

''डिम्पिल ने हँसते हुए अपना सुनहरा सर टाइप राइटर के पीछे छुपा लिया। मैं गुड़िया को डोरी से पकड़कर लहराने लगा।

'अरे ! इसकी शकल तो तुमसे बहुत मिलती है, पर शीज़ो ये तुम्हें क्या सूझी ?'

''टाइप राइटर के पीछे से बारीक आवाज़ उभरी, 'जापानी इसी तरह शुक्रिया अदा करते हैं।'

'अच्छा !'

'पर मेजर बिन ग़ाज़ी का तुमने कभी इस तरह शुक्रिया अदा नहीं किया।'

''डिम्पिल तन-सी गई। उसने सर झटककर कड़ुवे स्वर में कहा, 'मुझे ऐसी बातें नापसन्द हैं।'

''और वो जल्दी-जल्दी टाइप करने लगी।

''डिम्पिल को मेज़र बिन गाज़ी नापसन्द है।

"वेबस लड़की ! वो कहना चाहती थी कि मुझे बिन ग़ाज़ी नापसन्द है। मुझे उससे नफ़रत है। पर वो न कह सकी, वो कभी नहीं कह सकती थी। डिम्पिल को बिन ग़ाज़ी नापसन्द था। पर उसके बूढ़े दादा को चाय बहुत पसन्द थी, उसकी अधेड़ उम्र की माँ को रोटी पसन्द थी और उनके मालिक मकान को हर पहली का किराया बड़ा पसन्द था। डिम्पिल ख़ामोश हो गई और मैं किताब खोलकर डिम्पिल के बारे में सोचने लगा। मैं जैसे-जैसे उसके बारे में सोचता, मेरे दिल में उस दुबलो पतली, कमज़ोर और ग़रीब लड़की की इज़्ज़त बढ़ती जाती, और मुझे उसके चरित्र का सब से नाज़ुक और कमज़ोर पहलू सब से मज़बूत और अहम महसूस होने लगता। एक बार मैंने उससे पूछा, 'शीज़ो ! तुम कहाँ रहती हो ? तुम्हारा बाप क्या करता है ?'

"और डिम्पिल ने टाइप की मश्क़ करते हुए मुझे बाताया कि उसका बाप मुद्दत हुई घर-बार छोड़कर कहीं चला गया है। वो बहुत ख़ूबसूरत था। और हमेशा नई-नई औरतों के पीछे लगा रहता था। चुनानचे उसने होटल की एक इटैलियन बावर्चिन से छुप-छुपाकर शादी रचा ली और उसे साथ लेकर कहीं ग़ायब हो गया। सात साल से उसने घर का मुँह नहीं देखा। अब वो शहर के पूर्वी इलाक़े की एक छोटी-सी तंग गली में, अपनी माँ, बूढ़े दादा और छोटी बहन के साथ रहती है।

"मैंने पूछा, 'पर शीज़ो, इतनी छोटी तंख़्वाह में तुम्हारा गुज़ारा कैसे होता है ?'

'जनाब, हम किसी-न-किसी तरह गुज़ारा कर ही लेते हैं। हम ने अपने मकान का निचला हिस्सा एक चाय कम्पनी को दे रखा है, जिसे वो बतौर गोदाम इस्तेमाल करते हैं। इस तरह मकान का किराया भी आसानी से निकल आता है।'

"डिम्पिल ख़ामोश हो गई। वो टाइप करती रही और मैं किताब खोले सोचता रहा। एक पूरे घराने का ख़र्च इस कमज़ोर लड़की के कंधों पर था और डिम्पिल के कंधे नाज़ुक थे। अगरचे उसके बारीक होंठ गुलाब की पत्तियों जैसे थे और उसकी छोटी तंख़्वाह थी और वो गुलाब की पत्तियों को अम्रीकी, ब्रिटिश और हिन्दुस्तानी सिपाहियों से बचाकर रखना चाहती थी, पर जापान को आर्थिक हालत उन पत्तियों से भी ज़्यादा नाज़ुक थी। डिम्पिल कब तक इस फूल को शाख़ों में छिपाकर रख सकेगी ! वो निर्बल जापानी लड़की उसकी रक्षा न कर सकती थी पर मैंने फूल की रक्षा करने का फ़ैसला कर लिया।

"मुझे चाय की आदत नहीं है पर मैंने हाउस बॉय को दिन में दो बार दफ़तर में चाय लाने का हुक्म दिया। जापान के निचले औसत तबके में चाय पानी की तरह पी जाती है, पर ओकायामा में चीनी सिर्फ़ बुर्जुवा तबके और फ़ौज में इस्तेमाल की जाती थी। न जाने बाक़ी लोग फीकी, कड़वी और कसैली चाय किस तरह पी जाते थे। मैंने पहले ही रोज़ चाय की प्याली और बिस्कुट डिम्पिल को दिये तो उसने झिझकते हुए प्याली पकड़ ली। वो खामोशी से चाय के साथ बिस्कुट खाने लगी। अगरचे वो धीरे-धीरे खा रही थी पर मुझे यूँ महसूस हुआ जैसे डिम्पिल कई रोज़ से भूकी थी। दूसरे हफ़ते मैं कैन्टीन से वापसी पर दस पौंड चीनी साथ लेता आया। सारा दिन वो रेकार्डों की अलमारी में पड़ी रही। शाम को डिम्पिल ट्रक पर बैठकर घर जाने लगी तो मैंने चीनी से भरा हुआ थैला उसके साथ रख दिया। डिम्पिल ने ताज्जुब से मुझे देखा।"

'ये क्या है?'

'इसे घर जाकर खोलना।'

"डिम्पिल हँस पड़ी। मैं भी हँसने लगा। और ट्रक रवाना हो गया और डिम्पिल मोड़ घूमने तक मुझे मुस्कराती निगाहों से देखती रही। सुबह दफ़तर में दाखिल होकर उसने झुककर, 'गुड मार्नी, सर!' कहा और मेरे पास आकर खड़ी हो गई। मेजर बिन ग़ाज़ी अभी नहीं आया था। मैंने अखबार हटाकर कहा, 'क्या बात है, शीज़ो!'

'आप ने कल जो चीनी दी थी, मेरी माँ बहुत शुक्रिया अदा करती है। उसने पूछा है, आप फीकी चाय किस तरह पियेंगे?'

'मेरे पास चीनी है, शीज़ो!'

'फिर भी........मेरी माँ........।'

"डिम्पिल रुक गई, जैसे शब्द ढूँढ़ रही हो। शब्द न मिल सकने पर उसने अपना छोटा-सा बटुवा खोला और उसमें कुछ ढूँढ़ने लगी। दूसरे क्षण उसने एक लिफ़ाफ़ा निकालकर मेरे आगे रख दिया और खुद जल्दी से अपनी मेज़ पर जाकर बैठ गई। मैंने लिफ़ाफ़ा खोला तो उसमें से एक और रेशमी गुड़िया निकल आई। पर ये गुड़िया उस रोज़ वाली गुड़िया से ज़्यादा खूबसूरत और छोटी थी। मैंने हँसते हुए डिम्पिल की तरफ़ देखा। वो अपना चेहरा टाइपराइटर के पीछे छिपाये हुए थी। मुझे सिर्फ़ उसके गहरे, बादामी रंग के बाल ही नज़र आ रहे थे।

"बूढ़ा जापानी अनुवादक अन्दर दाखिल हुआ। मैंने गुड़िया दराज़ में रखते हुए उससे पूछा, 'क्यों साहब, जापानी लड़कियाँ बड़ी होकर भी गुड़ियों से प्यार

करती हैं।'

"बूढ़ा अनुवादक पहले तो हक्का-बक्का-सा रह गया। फिर खिसियाना होकर मुस्कराने लगा। डिम्पिल खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"डिम्पिल धीरे-धीरे मुझसे खुल रही थी। वो दिन में कई बार मेरी मेज़ पर आकर पूछती, 'साहब, ये शब्द क्या है? साहब, इस फ़ाइल का नम्बर मिसिंग है। टाइप ठीक है न, साहब?'

"मेजर बिन ग़ाज़ी के कमरे का दरवाज़ा अगरचे पर्दे से ढका हुआ था, मगर वो अपनी बेटी की पूरी तरह देखभाल कर रहा था। पर वो मुझसे कुछ न कह सकता था क्योंकि वो ओकायामा में हज़ार साल पहले की प्राचीन तस्वीरें, मोर्चा खाई पुरानी छुरियाँ और महात्मा बुद्ध के समय के बर्तन इकट्ठे करने आया था और मैं फ़ौजी प्रोग्राम करने। अगर मैं खुश रहता तो वो चाक़ू छुरियाँ, प्याले, सुराहियाँ और तस्वीरें भी जमाकर सकता था और फ़ौजी प्रोग्राम भी बाक़ायदा हो सकता था। इसीलिए वो आँखें बन्द किये हुए था पर आदमी कुछ 'भक्त' टाइप था इसलिए चोट करने से न चूकता था। एक दिन बड़े प्यार से मेरा कन्धा दबाकर कहने लगा, 'चुन जी! किसी वक़्त सैर करने भी निकल जाया करो। ज़रा जी बहल जाता है।'

'बिन ग़ाज़ी साहब, मुझे इसकी आदत नहीं है।'

"बिन ग़ाज़ी ने नाक सिकोड़ी, 'सूँ! सूँ! मैं जानता हूँ, तुम उदास रहते हो, मियाँ! वतन से दूर और फिर अकेले आदमी हो। उदास न हो तो फिर क्या हो। मुझे इन बातों का खूब तजर्बा है? मियाँ, कई सालों से कमान अफ़सरी कर रहा हूँ। देखो, तुम कोई हाउस गर्ल क्यों नहीं रख लेते?'

"मुझे उसकी बात बहुत बुरी लगी, पर मैं टाल गया, 'माफ़ कीजिये, मेरे पास हाउस बॉय मौजूद है।'

"बिन ग़ाज़ी और झुककर धीरे से बोला, 'मियाँ, सिपाही दुनिया में सिर्फ़ दो ही चीज़ों से मुहब्बत करता है। पहली चीज़ औरत और दूसरी छुट्टी। तुम्हारे पास न औरत है और न तुम छुट्टी इन्ज्वाय करते हो।'

"मुझे न औरत की ज़रूरत है, न छुट्टी की। औरत फ़रेब देती है और छुट्टी........।'

"पर मेजर बिन ग़ाज़ी ने मेरी बात काट दी। 'औरत और फ़रेब? मियाँ म में ताक़त होनी चाहिये। दखून होना चाहिये। मजाल है, किसी औरत की कि वो दूसरे का हाथ पकड़े। अभी बच्चे हो, चन जी! औरत बड़ी ज़रूरी चीज़ है।

अरे, ये तो तुम्हारा राशन है। तुम औरत को क्या जानो। वो छः बच्चों की माँ होकर भी इश्क़ कर सकती है। मुझे इन बातों का खूब तजर्बा है। तुम एक हाउस गर्ल ज़रूर रखो और अगर तुम चाहो, तो ये लड़की—क्या नाम........शीज़ो को........।'

'माफ़ कीजिये, मैं ऐसी बातें नहीं सुना करता।' मैंने ग़ुस्से में कहा।

"बिन गाज़ी।हँस पड़ा, 'मियाँ नाराज़ क्यों होते हो? ग़ालिब साहब का वो शेर नहीं सुना क्या....

दरियाए-इश्क़ में अपना मुक़ाम पैदा कर,
कि तू भी एक नई सुब्ह और नई शाम पैदा कर।

चन जी! पैदा करो, कुछ-न-कुछ पैदा करो, और औरत के बग़ैर अकेले कुछ पैदा नहीं हो सकता।'

"मेजर बिन ग़ाज़ी "सूँ-सूँ" करता, नाक सिकोड़ता अपने कमरे में चला गया और मैंने सिग्रेट राखदान में मसल दी।

"बातचीत चूँकि पंजाबी में हुई थी, इसलिए डिम्पिल की समझ से बाहर थी। वैसे वो अपना नाम सुनकर चौकन्नी-सी हो गई थी और उसने मेरी बातचीत के कड़ुवे लहजे को भी महसूस किया था। शाम को दफ़्तर से निकलते हुए, मैंने उसे बिन ग़ाजी की सारी बातें सुनाईं तो वो बहुत हँसी। उसने भोलेपन से स ढलकाकर कहा, 'आप मुझे हाउस गर्ल क्यों नहीं रख लेते। मैं आपको खाना भी पका दिया करूँगी।'

"मैंने कहा, 'तुम हाउस गर्ल बनने के लिए नहीं हो।'

'फिर किस लिये?'

'टाइप करने के लिये।'

"डिम्पिल हँस पड़ी। 'टाइप करना तो तुझे अभी तक नहीं आया।'

"हम ट्रक के करीब पहुँच गये थे। डिम्पिल ट्रक में सवार हो गई। अम रीकी सेक्शन की लड़कियाँ आ गईं। ट्रक चल पड़ा। डिम्पिल ने हाथ उठाक कहा, "सायोनारा" (खुदा हाफ़िज़)। मैंने भी हाथ हिलाया।

"सायोनारा!' ट्रक सनोबर, शहतूत और चेरी के दरख्तों तले मोड़ घ गया।

"सुबह दफ़्तर आया तो क्या देखता हूँ किसी ने मेज़ पर बिछे हुए सफ़े सोख़्ते पर सुर्ख़ और सियाह रोशनाई की मदद से बिल्ली का बड़ा-सा सर ब दिया है। मैं ताज्जुब में खड़ा था और डिम्पिल टाइपराइटर के पीछे सर छुप

हँस रही थी। मैं समझ गया शरारत डिम्पिल की थी। चुनानचे दूसरे पहर जब वो किसी काम के लिए बाहर गई तो मैंने उसके स्लोलाइड के छोटे से बेग में डिब्बा खोलकर फलों का रस उँडेल दिया। शाम को डिम्पिल चलने से पहले बेग खोलकर सफ़ेद दस्ताने लगाने लगी, तो उसकी उँगलियाँ सुर्ख़ी से लथपथ हो गईं और उसने जल्दी से बेग उलट दिया। रस में भीगे हुए दस्ताने, रूमाल, कंघी और पफ़ फ़र्श पर गिर पड़े। डिम्पिल शोर मचाने लगी। 'देखिये साहब, मेरी सारी चीज़ों का सत्यानास हो गया है। ये आखिर किसने शरारत की है। मैं मेजर से शिकायत करूँगी। अब मैं इनका क्या बनाऊँ ?'

'और मैं मुँह दूसरी तरफ़ किये हँस रहा था। हवाल्दार क्लर्क भी हँस रहे थे। सब से ज्यादा मज़ा जापानी अनुवादक को आया था। वो मारे हँसी के लोट-पोट हुआ जा रहा था। डिम्पिल को पता चल गया कि शरारत मेरी थी। चुनानचे उसने मेरे एक दस्ताने में अंडे की ज़र्दी, सफ़ेदी भर दी लेकिन मैंने बुरा न माना। मैं डिम्पिल की बात का बुरा मानना नहीं चाहता था। मेरे लिए वो एक मासूम और निरीह हिरनी थी, जो जंगल के किसी कुँज में शान्त झील के किनारे मखमली घास के नर्म क़ालीन पर कुलेल कर रही हो। मैं छिपकर प्रकृति के उस नृत्य को देखना चाहता था, जिसकी हर लहर और हरकत में ज़िन्दगी, खूबसूरती और कुछ पैदा करने की तड़प थी। ये ज़र्रों का नाच था, सितारों का नृत्य था, धरती का नृत्य था। धरती नाचती है तो ज़लज़ले आते हैं और नये सोते फूटते हैं और नई झीलें पैदा होती हैं। ये ज़िन्दगी का नाच था, धरती का नाच था, और डिम्पिल इस नाच की एक टूटती धनुष थी। उसके बाल रेशम के रेशों से बनाये गए थे। उसकी काली आँखों में फूटती सुबह की ताज़गी थी, उसके होंठों पर बरसात में फूली धनुष का सोना था, उसकी चाल में, उसके अंगों में एक समा था, सलीक़ा था, रूप था। ऐसा रूप, जो पिछले पहर अदखिले फूलों पर शबनम के आँसू बनकर टपकता है, और सूरज की पहली किरन के साथ खलियानों में झाँकता है, जो उस वक़्त भी था, जब डिम्पिल नहीं थी, जो उस वक़्त भी होगा जब डिम्पिल नहीं होगी, जो उससे पहले भी था और जो उसके बाद भी रहेगा।

"हमारे क़रीब पड़े हुए समावर में पानी खौलने लगा और एक लंबी सिसकार के साथ टोंटी में से सफ़ेद भाप निकलने लगी। मेरा दोस्त खामोश हो गया। हमने जल्दी-जल्दी चाय बनाई और प्यालियों में डालकर पीने लगे। खुश्क नहर में चरती हुई बकरियाँ बाहर निकल आई थीं और किनारे-किनारे उगी हुई माँग की झाड़ियों में मुँह मार रही थीं। खिड़की में से आखीरी जनवरी की ठंडक अन्दर

दाख़िल हो रही थी। गर्म कपड़े पहने चाय पीते हुए, हम अपनी जगह पर अपने को बड़ा ताज़ादम, चुस्त और ख़ुश महसूस कर रहे थे। एहसान ने जला हुआ तम्बाकू झाड़कर पाइप में नया तम्बाकू भरा और उसे सुलगाकर दो-तीन पुर-सुकून कश लगाने के बाद, गहरी और मुलायम आवाज़ में बोला, 'अब डिम्पिल दफ़तर में दाख़िल होती तो मुझे हर चीज़ में ज़िन्दगी की लहर दौड़ती महसूस होती। वो रेडियो-स्टेशन के अहाते में होती और दफ़तर की हर चीज़, रिकार्डों वाली अल्मारी, लम्बी मेज़ें, रेडियो सेट, टाइपराइटर, पानी की सुराही, दरवाज़ों पर गिरे हुए पर्दे, देहलीज़ में बिछा हुआ फ़ुट पैंड, हर चीज़ कुछ सुनने के लिये कान लगाए जान पड़ती। डिम्पिल आ रही है, डिम्पिल आ रही है। डिम्पिल दरवाज़े पर आती और नीले परदे झूलने लगते। बाहर चेरी की शाखें लहराने लगतीं, और शहतूत के दरख़्तों पर तोते टें-टें करने लगते। कमरे की हर चीज़ ज़िन्दगी, हुस्न, रोशनी और गर्मी से चमक उठती जैसे बहार का ओस-भरा आँचल उन्हें छू गया हो। डिम्पिल ठंडे और मीठे पानी की नदी थी जिसका काम किनारे पर उगी हुई घास को ताज़गी और हरियाली देना था। उसका वजूद दफ़्तर की बेजान फ़िज़ा के लिये ज़िन्दगी, ताज़गी, आज़ादी और ख़ुशी का सोता था। वो मुझसे बातचीत करती तो उसके ज़र्द चेहरे पर बहार की सुबह फूटती मालूम होती और मुझे महसूस होता, डिम्पिल गुलाब की बेल है, जिस पर ओस में भीगे हुए फूल सुनहरी धूप में मुस्करा रहे हैं। पहाड़ियों में घिरी हुई छोटी-सी घाटी है, जिसके ऊपर से बादल अभी सरके हैं और जहाँ रोशनी के फ़व्वारे उछलने लगते हैं। पर ताज्जुब की बात ये थी कि रोशनी, ख़ुशी और ज़िन्दगी की इस बाढ़ में भी डिम्पिल किसी वक़्त मुरझा-सी जाती और और बैठे-बैठे उसका चेहरा एकदम उतरकर ज़र्द हो जाता, जैसे कोई नदी चरागाहों से उछलती-कूदती निकले और अचानक पथरीले और बंजर इलाक़ों में दाख़िल हो जाय और उसकी सारी शोख़ी और चुलबुलाहट मंद पड़ जाए। उस वक्त झील के किनारे नृत्य करने वाली हिरनी घड़ी-भर के लिए अपनी कुलेल भूल जाती। डिम्पिल बदहवास-सी हो जाती! एक बार मैंने उसे कुरेदना चाहा, मगर वो मुस्कराने लगी और उसके गालों में नन्हे-नन्हे गढ़े पड़ गए और मुझे महसूस हुआ कि डिम्पिल एक सदा बहार फूल है। वो कभी उदास नहीं हो सकती, उसे कोई ग़म नहीं छू सकता।

"फ़रवरी के बीच में मेजर बिन ग़ाज़ी की साल गिरह आ गई।

"मेरा खयाल था कि हमारे यहाँ चालीस के बाद आदमी साल गिरह

मनाते हुए घबराता है क्योंकि उसके बाद हर नया साल एक बीमार मेहमान का रूप भर लेता है, जिसका काम सिर्फ़ घर में चारपाई पर लेटे-लेटे खाँसते रहना होता है, पर बिन ग़ाज़ी ने दफ़्तर के सारे स्टाफ़ को अपने घर दावत दे डाली। उस रोज़ आसमान पर भूरे बादल जमा हो रहे थे और हवा बन्द हो गई थी। मैं और डिम्पिल बिन ग़ाज़ी के घर पहुँचे तो देखा बड़ा कमरा मेहमानों से भरा था और मेजर बिन ग़ाज़ी उन्हें पुराने बरतन, बेढंगी तस्वीरें, फूलदार प्याले और सीप के टूटे हुए दस्तों वाली कुन्द छुरियाँ दिखा रहा था।

'ये प्याला मेरे दादा को क्यू शू के टापू में मिला था। उन्होंने यहाँ पाँच साल तक खाक छानी है।'

"मैं और डिम्पिल खिड़की के क़रीब बैठकर चाय वग़ैरा पीने लगे थे। बिन ग़ाज़ी ने दूर ही से डिम्पिल को और मुझे मुस्कराकर सलाम किया। फिर उसने हथेलियाँ रगड़कर चालाक भीड़ जमा करने वालों की तरह शिव की भद्दी-सी मूर्ति उठा ली।

"डिम्पिल ने कहा, 'ये मूर्ति बिन ग़ाज़ी ने टोकियो की नुमाइश में खरीदी थी।'

'तुम्हें कैसे पता चला ?'

'मुझे उसकी हाउस गर्ल ने बताया है।' डिम्पिल मुस्कराकर बोली।'

"मेजर बिन ग़ाज़ी कह रहा था, 'शिवजी की ये मूर्ति कपिलवस्तु के महाराजा के महल की शोभा थी। वहाँ से महात्मा बुद्ध इसे तक्षशिला ले गए। पिछले साल, जब खुदाई हुई तो इस नाचीज़ ने इसे डेढ़ लाख येन में खरीद लिया। साहबो ! अपने-अपने शौक़ की बात है।'

"मुझे ऐसा लगा, जैसे वो अभी अपने इर्द-गिर्द छड़ी से गोला बनाकर कहेगा, 'अब आप लोग एक-एक क़दम और पीछे हट जाएँ और एक बार ज़ोर से ताली बजाएँ।'

"दावत खत्म हो गई और मेहमान चले गए तो बिन ग़ाज़ी मुझे और डिम्पिल को अपने कमरे में ले गया। क़ालीन पर बैठते ही उसने कशमीरी शाल ओढ़ी, सर पर ऊनी कन्टोप पहना और माला फेरते हुए बोला, 'मियाँ, मैं तो फ़क़ीर आदमी हूँ। ये सालगिरह का टंटा तो फ़क़त यार-दोस्तों की खातिर-मुदारात के लिये था।' इतना कहने के बाद नर्म आवाज़ में बोला, 'साढ़े तीन रुपये उठे हैं इस दावत पर। तुम ऐसा करना, दो इन्टरटेनमेंट बिल बनाकर हेडक्वार्टर भेज देना और याद रहे तारीख डेढ़-दो हफ़्ता छोड़कर डालना।'

"मैं हक्का-बक्का रहा गया। जब हम उठने लगे तो उसने डिम्पिल के सर पर हाथ फेरा और हँसते हुए आँखें बन्द करके झूमने लगा।

"हम बाहर निकले तो हल्की-हल्की बर्फ़ गिर रही थी। लोग खामोशी से आ-जा रहे थे और उनके सरों और कन्धों से बर्फ़ चिमट रही थी। मैंने डिम्पिल के इन्कार के बावजूद अपना लंबा कोट उसे ओढ़ा दिया और हम फ़ुटपाथ पर दरख्तों के नीचे से होते हुए चल पड़े। हवा बन्द थी और बर्फ़ के गिरने की वजह से सर्दी कम हो गई थी। हम पर सनोबर के पेड़ों का साया था। डिम्पिल के सुनहरे बालों में कहीं-कहीं बर्फ़ की सफेद पत्तियाँ फूलों की तरह सज रही थीं। मेरा सिग्रेट गीला होकर बुझ गया था। मैंने उसे फ़ुटपाथ पर फेंकते हुए कहा, 'तुम्हारा मेजर बिन ग़ाज़ी के बारे में क्या ख्याल है, शीज़ो?'

'अरे साहब, मुझे उससे बड़ा डर लगता है। जब वो मेरे सर पर हाथ फेरता है तो काँपने लगती हूँ।'

'और मुझसे?'

"डिम्पिल मुस्कराकर दूसरी तरफ़ देखने लगी।

'बोलो शीज़ो, तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता?'

'नहीं।' और उसने शर्माकर सर झुका लिया।

"शीज़ो! मुझे तुम्हारे गालों पर ये नन्हें-नन्हें गढ़े बहुत पसन्द हैं। इन्हें अंग्रेज़ी में डिम्पिल्ज़ कहते हैं। मैं तुम्हें आज से डिम्पिल्ज़ नहीं बल्कि डिम्पिल कहा करूँगा। इस शब्द में संगीत भी है।'

"शीज़ो दूसरी तरफ़ मुँह किये थी। और उसी रोज़ से मैंने उसे डिम्पिल कहना शुरू कर दिया।'

'तुम्हें एतराज़ तो नहीं?' पर डिम्पिल ने मुँह इधर न किया।'

'डिम्पिल! मेरी तरफ़ देखो।'

"डिम्पिल ने चेहरा मेरी तरफ़ किया। वो एकाएकी मुरझाकर डूब-सा गया था। उसने मुस्कराने की बहुतेरी कोशिश की पर उदासी का भारा पर्दा जो उसके चेहरे पर गिर चुका था, उठ न सका। उसका घर क़रीब आ गया था। वो एक जगह रुक गई। उसने बदहवासी में दस्ताना उतारकर नन्हा-सा हाथ मेरी तरफ़ बढ़ा दिया।'

'सायोनारा।'

"और वो जल्दी से बाज़ार में घूम गई। मैं वहाँ बुत बना उसे देखता रहा। वो ज़रा झुककर चल रही थी और उसकी चाल में कोई सम और संतुलन न था।

"फिर एक दिन आया जब कि ओलों के भयानक तूफ़ान के बाद बर्फ़ पूरे ज़ोर-शोर से गिर रही थी। दफ़्तर की सारी खिड़कियाँ बन्द थीं और अँगीठियों में कोयले दहक रहे थे। बाहर तेज़ हवा में बर्फ़ के सफ़ेद गाले वहशियाना नाच, नाच रहे थे। मैं गर्म कपड़े पहने मेज़ पर अँगीठी के पास बैठा फ़रमाइशी गानों के पत्र छाँट रहा था। प्रोग्राम का वक़्त हो रहा था। मेजर बिन ग़ाज़ो घर से ही नहीं निकला था। डिम्पिल शायद लाइब्रेरी में गई हुई थी। मैंने लाग बुक और रेकार्ड संभाले और बरामदे में आ गया। बूथ में दाखिल होने से पहले मैंने डिम्पिल को देखा। वो स्टुडियो नम्बर ४ में दाखिल हो रही थी जो आफ़ था। आज वो सुबह ही से कुछ चुप-चुप थी। मैंने उसे बुलाना चाहा पर प्रोग्राम में सिर्फ़ कुछ सेकंड रह गए थे।

"बीस मिनट बाद जब प्रोग्राम ख़त्म हुआ तो मैं स्टूडियो नम्बर ४ की तरफ़ बढ़ा। मुझे यक़ीन था डिम्पिल अन्दर ही होगी। मैंने धीरे से पहला दरवाज़ा खोलकर शीशे से चौखटे में से अन्दर नज़र डाली। डिम्पिल कोने वाले बड़े प्यानो पर बैठी पर्दों पर धीरे-धीरे उँगलियाँ रख रही थी, उठा रही थी। मैंने दूसरा दरवाज़ा भी खोल दिया, जो बेआवाज़ था। प्यानो के गहरे और उदास स्वर मेरे कानों से टकराए। स्टूडियो का वातावरण गर्म और शान्त था और फ़िज़ा में अरगन के संगीत के अलावा प्यानो पर रखे हुए नरगिस के फूलों की मीठी-मीठी खुशबू भी मिली हुई थी। डिम्पिल की पीठ मेरी तरफ़ थी। उसे मेरे आने की बिलकुल ख़बर न हुई। मैं अपने पीछे दरवाज़ा बन्द करके वहीं खड़ा हो गया, जैसे प्यानो के उदास दर्द भरे स्वर मेरे आगे दीवार बनकर खड़े हो गए हों। ये स्वर भारी और उदास थे, जैसे वो प्यानो को किसी शाही कनीज़ (लौंडी) की दर्दभरी प्रेम-कथा सुना रहा हो और प्यानो आहें भर रहा हो। उस वक़्त मुझे अपने-आप पर अलिफ़ लैला के किसी मल्लाह के होने का गुमान हो रहा था जो किसी जिन की सहायता से किसी शहज़ादी की ख़्वाबगाह (शयन गृह) में जा पहुँचा हो।

"अचानक प्यानो बन्द हो गया, और स्वरों की उदास प्रतिध्वनि डूबती चली गई। प्यानो खामोश था, स्वर डूब गए थे और डिम्पिल ने अपना मुलायम भूरे बालों वाला सर उसकी पट्टी से लगा दिया। मैंने आगे बढ़कर नर्मी से अपना काँपता हुआ हाथ डिम्पिल के कन्धे पर रख दिया। उसने काँपकर सर उठाया। वो रो रही थी। मुझे देखते ही वो उठी और ज़र्द रूमाल से आँसू पोंछती हुई बाहर निकल गई।

"ओकायामा पार्क में टहलते हुए एक रौशन और चमकीली दोपहर को डिम्पिल ने मुझे बताया, वो एक पंजाबी कैप्टेन से अपना दिल हार चुकी है, जो उसे छोड़कर मुद्दत हुई क्यू शू चला गया है। 'मैं उस कैप्टन का नाम ज़ाहिर नहीं करूँगी। सिर्फ़ तुम्हें इतना बताए देती हूँ कि वो गुजरात का रहने वाला है।' डिम्पिल ने थकी-थकी-सी आवाज में कहा।

'इसी पार्क में जब पेड़-पौधे, फल-फूल से लद जाते तो हम पहरों हाथ में हाथ डाले घास पर घूमते रहते। ओकायामा की बहारें अपने जोबन पर होती थीं और घास में भी खुशबू होती थी और शाम को झीलों के किनारे जलने वाले लैम्प शान्त पानी में अलाव रौशन कर दिया करते थे। ये कोई बहुत पहले की बात नहीं।

'कैप्टेन को ओकायामा छोड़े दूसरा साल है। पर इस पार्क में झूमते हुए चेरी के दरख़्तों पर वो फूल न खिल सके, जिनकी महक में हमारी मुहब्बत परवान चढ़ी थी। चीड़ के नोकीले झूमरों में वो सितारे फिर कभी नज़र नहीं आए, जो हम दोनों को साथ-साथ चलते देखकर अपनी चाँदी की पलकें झपकाया करते थे। और उन सामने वाले मंदिरों के लकड़ी के कलश उस चाँदनी से अभी तक वंचित हैं जिसमें हमारी मुहब्बत ने पहला साँस लिया था। वो मीठी बोलियों वाले खुशरंग पन्छी भी अब यहाँ नहीं। ओकायामा में वो बर्फ़ फिर कभी नहीं गिरी जो कैप्टेन के घुँघराले बालों पर सफ़ेद पत्तियों की तरह चिमट जाती थीं। बिन ग़ाज़ी की सालगिरह वाले दिन, मुझे तुम्हारे बालों पर रुकी हुई बर्फ़ देखकर कैप्टेन का खयाल आ गया था, और मैं उदास हो गई थी। एहसान! मुझ पर तुम्हारे बहुत से एहसान है। उनका बदला चुकाने के लिये सारी उम्र चाहिए। मगर मैं मजबूर हूँ। तुम मुझे चाहते हो, यही वजह मेरे कभी-कभी उदास हो जाने की है। मैं तुम्हें नाउम्मीद होते नहीं देख सकती और तुम्हें अपनी मुहब्बत भी नहीं दे सकती। मेरी तिजोरी बिलकुल खाली है। मैं अपना सब कुछ लुटा चुकी हूँ। मैं तुम्हें बेहद पसन्द करती हूँ और उसी तरह प्यार करना चाहती हूँ जिस तरह कैप्टेन से करती थी मगर अपनी ख्वाहिश के बावजूद मैं ऐसा नहीं कर सकती। तुम मुझे माफ़ कर देना, एहसान!'

"डिम्पिल बोले जा रही। उसके काँपते हुए होंठों से शब्द बेजान सूखे और मुर्दा पत्तों की तरह गिर रहे थे। हम एक तंग-सी रविश पर जा रहे थे। हमारे सरों पर सनोबर के पेड़ों का साया था। यहाँ छाँव में काफ़ी ठंडक थी। डिम्पिल ने दोनों हाथ कोट की जेबों में डाल रखे थे। उसके सुनहरे बाल परेशान से थे।

चेहरे पर पत्थर-सी ज़र्दी छाई थी। उस रविश के आख़ीर पर एक छोटी-सी वीरान झील थी, जिसके किनारे कीचड़ में कमल के ज़र्द फूल खिले हुए थे। डिम्पिल मुझे एक दरख़्त के पास ले गई, जिसके तने को चौड़े पत्तों वाली जंगली लता ने ढाँक रखा था। उसने एक जगह से पत्तों को परे हटाया तो दरख़्तों पर दो दिल खुदे हुए थे जिनमें एक तीर धँसा था। नीचे डिम्पिल और उसके महबूब कैप्टन का नाम लिखा हुआ था। डिम्पिल का सारा शरीर काँपता हुआ मालूम हो रहा था। वो झील की तरफ़ मुड़ी और टूटे हुए स्वर में बोली, 'यहाँ हम देर तक बैठे रहा करते। इस कुँज की पुरसूकून तनहाई हम पर जादू-सा कर दिया करती। यहाँ पहली बार कैप्टन ने मुझे बाहों में लेकर मेरा सर........'

"डिम्पिल ने रुककर नन्हा-सा ज़र्द रुमाल निकाला और आँसू पोंछने लगी। मैं अभी तक ख़ामोश और टूटे हुए दिल से उस जापानी लड़की की खोई हुई मुहब्बत की कहानी सुन रहा था। मुझे कभी खयाल न आया था कि डिम्पिल किसी और की मुहब्बत में इस शिद्दत से गिरफ़्तार है ? मुझे उस पर तरस आ रहा था और मुझे उस कैप्टेन पर बेहद ग़ुस्सा था, जो उसे इतनी दूर तक साथ लाकर अचानक अकेला छोड़ गया था। मैंने जल्दी से डिम्पिल को अपने साथ लगा लिया, 'जी न हारो, डिम्पिल ! मुहब्बत हमेशा नाकाम रहती है, और दुनिया इससे बढ़कर हमें कोई चीज़ दे भी नहीं सकती।'

"डिम्पिल मेरी छाती से सर लगाए सिसकियाँ भरने लगी। पार्क से निकल कर मैं पहली बार डिम्पिल को उसके घर तक छोड़ने गया। उसका घर शहर के बहुत घने आबाद हिस्से में था। वहाँ तक पहुँचने के लिए हमें कई पेचदार बाज़ारों और तंग गलियों से गुज़रना पड़ा। बेढंगे बाज़ारों में झुकी हुई छतों वाले चायखानों के अन्दर सूजे हुए चेहरों वाले ज़र्द जापानी मटियाली चाय पी रहे थे। रिक्शा चलानेवाले बिजली के खम्बों से टेक लगाए सियाह रंग सिगार पी रहे थे और मैले दाँत निकालकर अपने साथियों से ग़प-शप में लगे हुए थे। गन्दी और नम गलियों में औरतें अपने घरों के बाहर खड़ी लम्बे बालों में कंघी कर रही थीं या आपस में लड़-झगड़ रही थीं। फ़िज़ा में सूखी मछलियों की तेज़ गन्ध बसी हुई थी। मेरी वर्दी देखकर कभी कोई बच्चा हमारे पीछे लपकता और डिम्पिल उसे झिड़क देती।

'ये क्या कहते हैं, डिम्पिल ?'

'कुछ नहीं........चाय के लिये बिस्कुट माँगते हैं।'

"डिम्पिल का घर दो मंज़िला था, जिसका छज्जा बाहर को निकला हुआ

था। हमें एक तंग सीढ़ी पर से गुज़रना पड़ा जो लकड़ी की थी। दूसरी मंज़िल पर एक लंबा-सा कमरा था, जिसे तीन-चार छोटे कमरों में बाँट दिया गया था। हर कमरे को फूलदार काग़ज़ की पूरे क़द की दीवार अलग करती थी। दरवाज़े पर डिम्पिल का बूढ़ा दादा मिला, जिसके चेहरे की ज़र्द खाल झुर्रियों से लटक रही थी। उसका रूईदार कोट जगह-जगह से फट चुका था। उसने एक फ़ौजी को अपने घर में देखा तो घबराकर फ़ौरन ज़मीन पर माथा टेक दिया। डिम्पिल के कमरे में भी फ़र्श पर रंगीन चटाई बिछी हुई थी। एक तरफ़ कम्बल में लिपटा हुआ बिस्तर पड़ा हुआ था। कोने में ऊँची चौकी पर गौतम बुद्ध की छोटी-सी मूर्ति थी। खिड़की के पास ही मेज़ पर लिखने-पढ़ने का सामान रखा हुआ था। डिम्पिल ने मुझे कुरसी पर बिठाया और खुद घुटने मोड़कर बैठ गई।

'तुम्हें ये घर पसन्द आया?'

'हाँ, डिम्पिल, ये बिलकुल हमारे घरों की तरह है।'

'मैं इसी घर में पैदा हुई थी।'

''डिम्पिल की अधेड़ उम्र की माँ अन्दर आई। उसने झुककर सलाम किया और वो भी घुटने मोड़कर चटाई पर बैठ गई। उसके बाद डिम्पिल की छोटी बहन, मीहो अन्दर आई, जिसकी उम्र लगभग दस-ग्यारह साल होगी। उसके गोल-गोल चेहरे से शरारत टपक रही थी। मीहो दोनों मुट्ठियाँ जोड़कर छुपी और शर्माकर बाहर भाग गई। डिम्पिल ने उसे आवाज़ दी।

'ओ चायदा साई, मो हो।'

'' उस जुमले में 'चाय' के शब्द ने सारा भेद खोल दिया।'

'डिम्पिल चाय मत बनवाना।'

''लेकिन थोड़ी देर बाद चाय आ गई और साथ ही पाइनऐपिल के क़तले भी। वापसी पर डिम्पिल, उसकी माँ और छोटी बहन मुझे गली तक छोड़ने आए। डिम्पिल बाज़ार तक साथ देने को तैयार थी। पर मैंने उसे रोक दिया और अकेला ही चल पड़ा। गली का मोड़ घूमते हुए मैंने देखा कि वो लोग मकान के बाहर अभी तक खड़े थे। उस रात बिस्तर पर लेटते ही मुझे डिम्पिल के खयाल ने घेर लिया। मैं जानता था कि डिम्पिल किसी और की हो चुकी है और वो एक ऐसा सोता है जिससे मेरी प्यास कभी नहीं बुझ सकती। लेकिन इसके बावजूद मैं सूखे होंठों पर ज़बान फ़ेरते हुए उस सोते के किनारे आ बैठा। मैंने पूरी ताक़त से उस समुन्दर में छलाँग लगा दी थी और अब किनारे तक पहुँचने की तमन्ना दिल में बाक़ी न थी। मैंने दिल-ही-दिल में फ़ैसला कर लिया

कि डिम्पिल के दिल से उस शख़्स का ख़याल निकालकर रहूँगा, जो उसे धोखा देकर चला गया है और जो फिर कभी उसके पास न आएगा। चुनानचे मैं पहले से भी ज़्यादा उसका ख़याल रखने लगा। तीसरे-चौथे मैं हाउस-बॉय के हाथ चीनी, जाम, मक्खन, पनीर, फल, बिस्कुट और चाय वग़ैरा डिम्पिल के घर पहुँचवा देता। किसी रोज़ उसकी छोटी बहन मीहो आ निकलती तो मैं उसकी जेबें चाकलेट से भर देता।

"मेजर बिन ग़ाज़ी अपने कमरे में बैठा इस खेल को बड़ी रहस्यभरी दिलचस्पी से देख रहा था। वो मुझे कुछ कह तो न सकता था लेकिन बातों-बातों में चोट करने से कभी न चूकता था, 'अरे मियाँ जब ख़ुदा से लौ लगी हो तो दिल की खिड़की खुली होती है, और जब किसी फ़ैशनेबिल लड़की से पाला पड़ा हो तो बस जेब का सफ़ाया हो जाता है।'

"पर मुझे इसकी ज़र्रा बराबर परवाह न थी। मुझे किसी की भी परवाह न थी। मैं डिम्पिल की मुहब्बत का भूका था। मैं उसके प्यार-भरे बोल और संगीत भरी आवाज़ का मतवाला था। मुझे बिन ग़ाज़ी की मक्कार सूँसूँ और चालाक हँसी से कोई मतलब न था। मुहब्बत के तेज़ उड़ानेवाले पर लगाकर मेरी उड़ान उन मैदानों से ऊपर थी, जिनको चरागाहें फूलों से महकी हुई थीं। डिम्पिल की मुहब्बत ने मेरे लिए उन मंदिरों की खिड़कियाँ खोल दी थीं जिनके पवित्र चौखटों पर लोबान की धीमी ज्योति में मुहब्बत के ज़ख़्म खाई शहज़ादियों की आत्माएँ शोक मना रही थीं। ये एक आग थी जिसके शोले मेरी आत्मा को प्रकाश दे रहे थे। ये एक ऐसा प्रज्वलित राग था, जिसकी लहरें मुझे अनदेखे स्वप्नलोक के टापुओं की ओर बहाए लिये जा रही थीं। एक ख़याल था, ऊँचाई, बुज़ुर्गी और महानता का ख़याल। रोशनी, विस्तार और जगतव्यापी सहानभूति का ख़याल। जिसकी गगनचुम्बी चोटियों पर मुझे अपना वजूद (अस्तित्त्व) रोशन ब्रह्माण्ड में पहुँचकर कोमल और हलके बादलों में ढलता महसूस हो रहा था। ये महानता मैंने कभी महसूस न की थी। ये राग मैंने कभी महसूस न किया था और उस आग की चमक मैंने पहले कभी न देखी थी। डिम्पिल के बारीक होंठ कभी इतने ख़ूबसूरत न थे। उसके बालों में इन्द्र धनुष का सोना इस आब-ताब से पहले कभी न पिघला था और उसकी आवाज़ पर इससे पहले कभी मंदिरों की घंटियों का भ्रम न हुआ था। ओकायामा पार्क में डिम्पिल को बेइख़्तियार अपने सीने से लगा लेने के बाद मैंने पहली बार महसूस किया था कि जब चेरी के फूल नीलाहट लिये धूप में डाल-डाल पर खिले हों तो पंछी अपने आशियाने में क्यों

नहीं ठहरते। यही वो मदहोश और सब कुछ भुला देने वाले क्षण थे। जब मुहब्बत चोर दरवाज़े से मेरे दिल में दबे पाँव दाखिल हुई थी और मुझे बिलकुल खबर न हुई। अब वो मेरे खून की हर बूँद में दाखिल हो गई थी और मैं जैसे ख्वाब में उसके पीछे चला जा रहा था।

"मेरी मुहब्बत वक़्त के साथ-साथ फल-फूल रही थी। ये गाड़ी एक जँची-तुली रफ़्तार के साथ छोटे-छोटे पड़ाव छोड़ती, बड़े जंक्शन की तरफ़ बढ़ रही थी कि अचानक किसी ने ज़ंजीर खींच दी। एक धक्का-सा लगा और गाड़ी के पहिये अपने-आप लाइन पर जम गए। मैंने चौंककर पीछे देखा, डिम्पिल बरामदे में तेज़ क़दम उठाती मेरी तरफ़ बढ़ रही थी। उसके कन्धों और सर पर कहीं-कहीं बर्फ़ की पत्तियाँ रुकी हुई थीं। उसका चेहरा खुशी से तमतमाया हुआ था और आँखों में एक अजीब-सी चमक थी। उसने मेरा बाज़ू पकड़ा और फूल-सी गई।

'वो····वो आ रहा है, एहसान।'

'डिम्पिल का साँस फूला हुआ था। मैं कुछ न समझ सका।

'कौन आ रहा है?'

'उसका खत आया है........वो........वो आज शाम ओकायामा पहुँच रहा है।'

'आखिर, उसका नाम भी लो।'

'कैप्टेन।' डिम्पिल ने जल्दी से कहा और दस्ताने उतारती हुई अन्दर भाग गई।

"बरामदे की बन्द खिड़कियों के शीशों से बाहर बर्फ़ गिरती साफ़ नज़र आ रही थी। बर्फ़ सुबह से गिर रही थी और शहतूत, चेरी और सनोबर की नंगी टहनियों, बिजली के तारों, बाग़ के बेंचों और पतझड़ की भारी घास को सफ़ेद, सर्द और बेजान कफ़न पहना रही थी। हर चीज़ पर एक पत्थर-सी खामोशी, एक मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। मैं बरामदे में खिड़की से लगा बर्फ़ से ढकी उन क़ब्रों को देखता रहा और डिम्पिल हफ़्ते-भर का प्रोग्राम टाइप करती रही। टिक........टिक........टिक........।

"मशीन पर उसकी उँगलियाँ चलती रहीं और मेरे दिमाग़ पर बेजोड़ और बेरंग शब्दों की निरर्थक लकीरें उभरती गईं। टिक........टिक........टिक। और वो फूल एक-एक करके शाखों से टूटते रहे, जिन्हें मैंने चाँदी की घाटियों में देखा था। मशीन चलती रही, शब्द बिगड़ते गये। फूल मुर्दा पक्षियों की तरह गिरते गए और सुनहरी और पवित्र लिखी लकीरें सियाह धब्बों में सिमट आई

और टुंड-मुंड बर्फ से ढके पेड़ उजड़ी क़ब्रों के वीरान पत्थरों में बदल गए और मुझे उस ग़रीब जापानी किसान की बेटी का गीत याद आ गया, जिसकी राह में ग़रीबी और सर्दी की पत्थर की दीवार खड़ी थी और जिसने बर्फ़ से ढकी घाटियों को देखकर कहा था :

मेरे पास जूता नहीं,
मेरे कोट की रुई बाहर निकल आई है,
और बर्फ़ पड़ रही है और रास्ते छुप गए हैं,
मैं तेरे मकान तक कैसे पहुँचूँ, मेरे महबूब ?

"डिम्पिल का स्वीटर भी कुहनियों से उधड़ चला था, बर्फ़ पड़ रही थी और उसे आज अपने महबूब से मिलने जाना था और रास्ते बर्फ़ से ढक गए थे। मैं जल्दी-जल्दी रेडियो स्टेशन से बाहर निकल आया। गिरती बर्फ़ में सड़कें वीरान थीं और कुछ गज़ों के फ़ासले पर कुछ दिखाई न देता था। चाइना मार्केट में क़ाफ़ी रौनक़ थी। दुकानों में बत्तियाँ रौशन थीं और लोग दहकाते हुए हीटरों के क़रीब खड़े लेन-देन में व्यस्त थे। एक दुकान पर मुझे हल्के नीले रंग का स्वीटर बहुत पसन्द आया, जिसके बाईं ओर चेरी का पेड़ बना था। ये स्वीटर मैंने खरीद लिया और लिफ़ाफ़े में डालकर वापस दफ़तर आ गया।

"शाम को डिम्पिल चलने लगी और मैं पहले की तरह उसे ट्रक तक छोड़ने आया तो मैंने लिफ़ाफ़ा उसकी झोली में डाल दिया। उसने जल्दी से लिफ़ाफ़ा खोला और हल्के नीले रंग का स्वीटर देखकर उसकी आँखें खुशी से चमक उठीं। वो कुछ कहना चाहती थी। उसके होंठ कँपकँपाए। वो कुछ कहने वाली थी कि ट्रक रवाना हो पड़ा।

"उसी शाम उसे अपने परदेशी प्रियतम से मिलना था। मैं रात-भर करवटें बदलता रहा।

"दूसरे दिन डिम्पिल दफ़तर में आई तो उसका चेहरा नरगिस के बासी फूल की तरह कुम्हलाया हुआ था। सूजी हुई आँखों में वीरानी छाई थी, जैसे वो रात-भर रोती रही हो। मैं सकते में आ गया।

'क्या बात है, डिम्पिल ?'

"मैं आगे बढ़ा। डिम्पिल रुक गई। उसने पलकें उठाकर मुझे उदासी से देखा और पागलों की तरह मुझसे लिपट गई और फूट-फूटकर रोने लगी। दफ़तर में अभी कोई न आया था। फिर भी मैं उसे संभाला देता हुआ खाली स्टुडियो में ले आया। यहाँ बैठकर वो जी भरकर रोई। जब दिल का ग़ुबार कुछ हलका

हुआ तो आँसू पोंछे, बाल ठीक किये, शुरू से आखिर तक उसने अपनी पूरी कहानी सुनाई। उसने मुझे बताया कि वो शाम को नया स्वीटर पहनकर कैप्टेन से मिलने गई। वो उसे देखकर बहुत खुश हुआ। उसने उसके नए स्वीटर की बहुत तारीफ़ की। उसने डिम्पिल के सुनहरे बालों को चूमा। उसकी गुलाबी पत्तियों पर होंठ रखे और डिम्पिल के शरीर का हर कण दिल के साथ धड़कने लगा। थोड़ी देर बाद कैप्टेन का एक दोस्त आ गया। वो डॉक्टर था। इन्होंने मिलकर चाय पी और फल खाए। डिम्पिल बेहद खुश थी। अँगीठी में कोयले दहक रहे थे। फ़र्श पर बेहतरीन सुर्ख़ रंग के क़ालीन बिछे हुए थे। कमरा शान्त और गर्म था। कैप्टेन बातें कर रहा था और डिम्पिल के दिमाग़ में पायलें झनक रही थीं। वो सूरजमुखी के फूल के समान अपने प्रियतम को मुग्ध होकर तक रही थी। कुछ देर बाद उसका डाक्टर दोस्त उठकर बाहर चला गया। वो दोनों कमरे में अकेले रह गए। पाज़िटिव और निगेटिव शक्तियाँ एक जगह अकेले में छोड़ दी गई थीं। कैप्टेन ने सिग्रेट बुझाया और डिम्पिल के पास आकर बैठ गया। उसने डिम्पिल को बाज़ुओं में जकड़ लिया। डिम्पिल काँपने लगी। उसने फटी-फटी निगाहों से अपने प्रियतम को देखा, जिसकी शकल एकदम बदल गई थी, जिसकी प्यार-भरी आँखों में वहशत और बरबरता झलक रही थी, जिसका चेहरा काला पड़ता जा रहा था। कैप्टेन के बाज़ुओं की गिरफ़्त लोहे की तरह सख्त हो रही थी और डिम्पिल का गला सूख रहा था। उसने रुँधी हुई आवाज़ में कहा, 'कैप्टेन,....मैं मर जाऊँगी।' मगर कैप्टेन कमरे से जा चुका था और वहाँ सदियों पहले का नंग-धड़ंग वहशी इंसान खड़ा, भाला ताने अपने शिकार पर झपट रहा था। डिम्पिल की आवाज़ डूब गई और वो उस जंगली शिकारी के बाज़ुओं में मुर्दा हिरनी की तरह लटक गई।

"जब उसे होश आया तो कैप्टेन जा चुका था और वो क़ालीन पर पड़ी थी। उसकी आँखें खुली थीं मगर उसमें उठने की सकत बाक़ी न रही थी। दरवाज़ा धीरे से खुला और उसे कैप्टेन का डाक्टर दोस्त अन्दर आता दिखाई दिया। उसकी पतलून उसके कन्धे पर थी और क़दम डोल रहे थे। ये वो डाक्टर था जो कुछ ही देर पहले इक़बाल की फिलासॉफ़ी पर उसे लेक्चर पिला रहा था। डिम्पिल ने उठकर भाग जाना चाहा पर उसकी टाँगें जैसे उसके शरीर से अलग हो गईं थीं। उसने चीखना चाहा मगर उसका मुँह बन्द कर दिया गया। डिम्पिल ने मुझे बताया कि अब उसके पास कुछ बाक़ी नहीं रहा। जिस मीनार पर वो चढ़ रही थी, अब वो उसकी सातवीं मंज़िल से सर के बल नीचे सरकंडों में आ गिरी है।

वो मंदिर जिसके अन्दर आज तक किसी ने क़दम न रखा था अब एक सराय में बदल चुका था, जिसके सहन में ढोर-डंगर जुगाली कर रहे थे। डिम्पिल के आँसू खुश्क थे, मगर वो रो रही थी। उसके शाने काँप रहे थे। मेरे दिमाग़ में चिंगारियाँ-सी फूट रही थीं। मैंने लड़ाई में अनगिनत लोगों को, अनगिनत कैप्टनों और मेज़रों को मौत के घाट उतारा था और मेरे लिए एक और कैप्टेन की खोपड़ी उड़ा देना कोई अनोखी बात न थी। रिवालवर जेब में डाले मैं दो दिन लगातार उस कैप्टेन की तलाश में सर मारता रहा, मगर वो न मिल सका। वो उसी दिन सुबह ओकायामा छोड़ चुका था।

"दिन हफ़्तों और हफ़्ते महीनों में गुम होते गये। वक़्त का कारमा मंजिलों पर मंज़िलें पार करता, आगे बढ़ता गया और डिम्पिल हर मंजिल पर, पड़ाव पर अपनी रही-सही पूँजी दोनों हाथों से लुटाती चली गई। उसका गला खराब हो गया था और वो खाँसने लगी थी। उसका बदन पीला पड़ रहा था और उसकी आँखें अन्दर धँसती जा रही थीं और वो दफ़्तर से अक्सर ग़ैरहाज़िर रहने लगी थी।

"एक दिन हम दफ्तर के पीछे वाली खामोश सड़क पर तनहा जा रहे थे। ये पतझड़ के दिन थे। सड़क सूखे पत्तों से ढकी हुई थी और कहीं-कहीं खुश्क सर-कंडों और मुर्दा पत्तों के ढेर सुलग रहे थे। डिम्पिल ने हलका नीला स्वीटर पहन रखा था और हाथों में सफ़ेद दस्ताने थे। वो आज कुछ खुश थी। मैंने कहा, 'डिम्पिल! मुझसे शादी कर लो।'

"डिम्पिल रुक गई। उसने यूँ मेरी तरफ़ देखा जैसे मुझे पहली बार देख रही हो।

'एहसान, मैं दुनिया के हर आदमी से शादी कर सकती हूँ, मगर तुमसे कभी नहीं, कभी नहीं।'

'क्यों डिम्पिल?'

'इसलिये कि तुम बड़े अच्छे हो।'

'ये तो और भी अच्छा है।'

'नहीं ये बहुत बुरा है। काश, तुम इतने ऊँचे न होते। मैं तम्हें पसन्द करती हूँ और तुमसे ज़िन्दगी में कभी भी मैं बेईमानी नहीं कर सकती।'

'तुम कैसी बातें कर रही हो, डिम्पिल?'

'ये मुर्दा डिम्पिल की बातें हैं, एहसान! बीमार डिम्पिल की बातें हैं।'

'बीमार?'

'हाँ, बीमार। मैं बीमार हूँ। मैं एक खतरनाक मरज़ में गिरफ़्तार हूँ। मेरे

गले की नाली अन्दर ही अन्दर गल रही है। ये रोग मुझे उन ग्यारह आशिक़ों में एक ने दिया है, जो मेरे रंग-रूप पर फ़िदा थे और जो मुझे स्कूल के दिनों में मुसलसल खत लिखा करते थे लेकिन जिन्हें मैंने कभी जवाब न दिया था। आज वो मेरे चहीते महबूब हैं। ये रोग एक ने मुझे दिया और मैंने एक-एक करके सब को दे दिया है। ये रोग मेरे ख़ून में बस गया है और ये हर उस आदमी की अमानत है, जो मुझे चाय पिलाकर वहशी जानवरों की तरह अपने बाज़ुओं में जकड़ लेता है। तुम तो ऐसे नहीं हो।'

"मैं गुमसुम-सा होकर उसकी बातें सुन रहा था। 'डिम्पिल ! डिम्पिल ! मैं तुम्हारा इलाज कराऊँगा। डिम्पिल तुम्हें अस्पताल में दाखिल होना होगा। तुम्हें अभी नहीं मरना है। डिम्पिल ! अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ?"

"हम एक जगह चीड़ के पेड़ों के साये में खड़े थे। पतझड़ की हवा झूमरों में आहें भर रही थी। डिम्पिल के होंठों पर ज़हर भरी मुस्कराहट फैल गई

'हाँ, एहसान ! मुझे अभी मरना नहीं। अभी मेरी उम्र हो क्या है ? अठारह साल भी कोई उम्र होती है ? मैंने अभी देखा ही क्या है ? पर ज़िन्दगी तो मुझसे रूठकर बहुत पीछे रह गई है। इतनी पीछे कि अगर उसे ढूँढ़ने भी निकलूँ तो न पा सकूँ। जापानी लड़की सब-कुछ बरदाश्त कर सकती है पर अपने प्रेम का अपमान नहीं सह सकती। मैं ज़िन्दगी की अँधियारी मुँडेर पर खड़ी हूँ, नीचे मौत की गहरी अँधियारी खाई है। मैंने कैप्टेन से प्रेम किया, उसने मेरे प्रेम को पाँव तले मसल दिया। मैं अब भी उसे चाहती हूँ पर अब ज़िन्दगी अपना संतुलन खो बैठी है और मैं चटियल ढलानों पर से मौत की घाटियों में लुढ़क रही हूँ। अस्पताल मुझे मेरी ज़िन्दगी वापस न दिला सकेगा। और अब अगर कैप्टेन भी चाहे तो मुझे उस जगह पर दोबारा खड़ा नहीं कर सकता जहाँ से उसने मुझे धक्का देकर लुढ़का दिया था।'

"डिम्पिल चुप हो गई। उसकी हारी हुई घायल आवाज़ टूट गई और हम सूखे पत्तों पर बोझल क़दम उठाते वापस चल पड़े।

"१५ अगस्त को हिन्दुस्तान का बँटवारा हो गया। ओकायमा में भी हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी सिपाहियों ने जी भर के खुशियाँ मनाईं। शाम को मैं कुछ दोस्तों के साथ शहर के सबसे खूबसूरत होटल में जा निकाला। हॉल छोटी-छोटी मेज़ों और कुरसियों से भरा था। हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी और कई एक विदेशी फ़ौजी लोग बैठे शराब और खानों का मज़ा ले रहे थे।

"फ़िज़ा में लोगों की बातों और कहक़हों का शोर, गिलासों और चमच

के शोर से मिल रहा था। हम एक खाली मेज़ के गिर्द बैठ गए। अचानक मुझे डिम्पिल नज़र आई और मेरी नज़रें वहीं रुक गईं। वो कोने में एक तरफ़ रेशमी झालर के नीचे बड़े प्यानो वाली मेज़ पर बैठी थी। उस रोज़ वो जापानी पहनावे और किमेनो पहने थी, जिस पर गुलाबी और सुर्ख रंग के बड़े-बड़े फूल बने थे। उसके साथ अमरीकी एम० पी० का सार्जेन्ट बैठा सैंडविच खा रहा था। डिम्पिल उसके गिलास में शैम्पियन उँडेल रही थी और अमरीकी सार्जेंट से बातें कर रही थी। मुझे अपनी आँखों पर यक़ीन न आ रहा था। मैं उठा और लोगों के बीच से गुज़रता हुआ डिम्पिल की मेज़ के पास जा खड़ा हुआ।

'डिम्पिल ?'

''डिम्पिल ने मुझे देखा और बौखला-सी गई फिर वो मुस्कराकर उठी और मुझे एक तरफ़ ले गई। अमरीकी सार्जेन्ट उस बच्चे की तरह मुझे तकने लगा जिसका खिलौना किसी ने उठा लिया हो। डिम्पिल मेरे सामने खड़ी थी। उसके होंठ सुर्खी से पोते थे और ज़र्द गालों पर मलगजे पाउडर की धूल उड़ रही थी। किमीनो में वो एक आसमानी अप्सरा दिखाई दे रही थी, जो उड़ने के लिये पर तौल रही हो।

''डिम्पिल ! तुम्हें क्या हो गया है ?'

'डिम्पिल मुस्करा रही थी।

'डिम्पिल ! तुमने शराब कब से शुरू की ?'

''डिम्पिल की आँखों में शैम्पियन का खुमार सुलग रहा था और किसी वक़्त वो भूल-सी जाती थी।

'थोड़े दिन हुए। मगर क्या ये बुरी बात है, एहसान ? तुम नहीं देखते, इस अमरीकी सार्जेन्ट की शकल मेरे कैप्टेन से किस क़दर मिलती है। ओकायामा में हर सिपाही, हर सार्जेन्ट की शकल मेरे कैप्टेन से मिलती है। ये तो मुझे अब पता चला। तुम यहाँ कैसे ? हाँ, तुम्हें आजादी मुबारक हो।'

''मैंने कुछ कहना चाहा, मगर मेरे होंठों पर ताला पड़ गया और डिम्पिल जल्दी से अपनी मेज़ पर वापस चली गई।

''दूसरे रोज़ डिम्पिल दफ़्तर नहीं आई। डिम्पिल ने कोई दरख्वास्त न भेजी। दो हफ़्ते गुज़र गए, डिम्पिल की कोई खबर न आई। मैं उससे नाराज़ था। मैंने उसके घर जाकर हाल पूछने की तकलीफ़ न की। तीसरे हफ़्ते, डिम्पिल की छोटी बहन मीहो दफ़्तर आई। उसने बताया डिम्पिल बहुत बीमार है। मैंने उसको झिड़ककर वापस कर दिया लेकिन दफ़्तर से निकलते ही सीधा डिम्पिल के

घर पहुँचा। वो अपने कमरे में कम्बल ओढ़े चटाई पर लेटी थी। उसके बाल खुले थे और उसकी माँ सिरहाने बैठी उसका सर दबा रही थी। डिम्पिल ने मुझे देखते ही अपना मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया। मुझे धक्का-सा लगा, मैं उस पर झुक गया।

'डिम्पिल ! डिम्पिल ! मैं इतना बुरा तो नहीं ।'

"और ग़रीब लड़की फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी बूढ़ी माँ अपने आँसू पोंछती हुई दूसरे कमरे में चली गई। मैंने नब्ज़ देखी। बुखार हलका था, मगर शरीर पर सुर्ख़-सुर्ख़ दाने उभर आए थे।

"डिम्पिल ने ज़ख़मी निगाहों से मुझे देखा। उसका चेहरा वीरान था और आँखें सुर्ख़ हो रही थीं। बारीक होंठ, जो कभी गुलाब की पत्तियों जैसे हुआ करते थे, सियाह पड़ रहे थे। डिम्पिल ने रूमाल से बायाँ गाल ढाँप रखा था। मेरे बहुत कहने पर उसने रूमाल हटाया तो वहाँ बहुत बुरा फोड़ा निकला हुआ था।

'डिम्पिल तुम्हें अस्पताल चलना होगा। आज ही....अभी....इसी वक़्त ।'

"और मैंने डिम्पिल को उसी दिन अस्पताल में दाखिल करा दिया।

"कर्नल ब्लिम्प ओकायामा के उस अस्पताल में पन्दरह साल से काम कर रहा था। वो मेरा थोड़ा बहुत वाक़िफ़ था। मैंने उसे सारा हाल कह सुनाया। उसने डिम्पिल के गले का एक्सरे लिया। फ़िल्म को घूरते हुए उसने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा, 'नरखरा क़रीब-क़रीब गल चुका। इसका इलाज सिवाय आपरेशन के और कुछ नहीं। लेकिन इस पर काफ़ी खर्च आएगा और फिर जान का खतरा भी मोल लेना पड़ेगा।'

"मैंने कर्नल ब्लिम्प का हाथ थाम लिया।

'रुपये का खयाल न करें। आपरेशन ज़रूर कामियाब होगा ?'

"आपरेशन से पहले एक महीने तक डिम्पिल का इलाज होता था। मैंने इसके लिए एक अलग कमरा रिज़र्व करा लिया।

"आज़ादी मिलने के बाद आज़ाद देश को अपने बहादुर सिपाहियों की ज़रूरत थी। ये अफ़वाह दो महीनों से चक्कर लगा रही थी कि कुछ पता नहीं कब वापसी का हुक्मनामा मिल जाए। लेकिन कुछ दिनों से ये अफ़वाह कुछ ज़्यादा ही गर्म हो गई थी। पंजाबी सिपाहियों ने ओकायामा के बाज़ारों में लेन-देन का बाज़ार गर्म कर दिया था। मेजर बिन ग़ाजी ने स्टुडियो में लगे हुए रेशमी पर्दों के लिहाफ़ और तकियों के ग़िलाफ़ बनवा लिये थे। डिम्पिल के आपरेशन का दिन क़रीब आ रहा था। मेरा ज़्यादा वक़्त अस्पताल में गुज़रता था। दफ़्तर से निकलकर मैं शतदल और रात की रानी के फूल लिये सीधा डिम्पिल के पास

पहुँचता और उसके सिरहाने फूलों के ढेर लगा देता। मुझे देखते ही डिम्पिल का चेहरा तमतमाने लगता। मैं कुरसी खींचकर उसके पास ही बैठता। उसका नन्हा-नन्हा प्यारा हाथ मेरे हाथों में होता और मैं उसे तरह-तरह की मन गढ़न्त हँसाने वाली कहानियाँ सुनाता रहता। डिम्पिल की छोटी बहन मीहो फूलों का गुलदान सजाने लगती। किसी वक़्त मैं अपने वतन पंजाब के दरियाओं, खेतों, मैदानों और शहरों का ज़िक्र ले बैठता। मैं उसे बताता कि ओकायामा की तरह हमारे शहरों की गलियाँ भी रहस्यभरी और अँधेरी हैं। और खेतों में जब कटाई का मौसम शुरू होता है तो वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है और ढोल बजते हैं और धरती के बेटे उनकी ताल पर झूमर डालते हैं और उनके मक्खन लगे चमकीले बाल हवा में लहराते हैं। शहरों में तंग और अँधियारी, धुँध में मसजिदों के दरवाज़ों के बाहर अब भी कमसिन लड़कियाँ अपने छोटे भाइयों को कन्धे से लगाए इस इन्तज़ार में खड़ी रहती हैं कि नमाज़ी बाहर निकलें और उनके भाइयों पर फूँक मारें। डिम्पिल खामोशी से सुनती रहती। किसी वक़्त वो खुशी से काँपती हुई आवाज़ में कहती, जब मैं ठीक हो जाऊँगी तो तुम्हारे साथ तुम्हारे देश चलूँगी। मैं तुम्हारे साथ क़स्बे के खेतों और शहर की रहस्यमय गलियों में घूमा करूँगी, जहाँ तुम्हारा घर होगा और सीधे सादे लोग होंगे। उनकी आवाज़ें मेहरबान होंगी और उनके चेहरे मासूम होंगे।' और मैं उसका हाथ गर्मजोशी से दबाकर कहता, 'जरूर ! डिम्पिल ! तुम मेरे साथ चलना। हमारा क़स्बा दरिया के किनारे है और हमारा घर क़स्बे में सब से बड़ा है। और हमारे घर के आँगन में नीम का पेड़ है और उसके पीछे अमरूदों के बाग़ में एक कुआँ भी है, जिसका पानी ठंडा और बड़ा मीठा है। मेरी माँ और बहनें तुम्हें देखकर बहुत खुश होंगी।'

"डिम्पिल के चेहरे पर खून की सुर्खी झलक उठती। वो आँखें बन्द कर लेती जैसे हमारे घर के पिछवाड़े अमरूद के बाग़ों में पहुँच गई हो और क़स्बे की धुँधली और तंग गलियों में घूम रही हो और मेरी बहनों को बावर्चीखाने में बैठे, आटा गूँधते और रोटी पकाते देख रही हो। आपरेशन से एक रोज़ पहले उसका चेहरा रोज़ से ज़्यादा ज़र्द और पीला था। मुझे दाखिल होते देखकर वो बच्चे की तरह हुमककर मेरी तरफ़ बढ़ी। मैंने उसे पलँग पर लिटा दिया। मेरा हाथ पकड़कर वो दुखी स्वर में बोली, 'सुबह मेरा आपरेशन है, तुम यहीं रहना। मैं बुज़दिल नहीं हूँ मगर मेरा दिल न जाने क्यों डूब रहा है। सोचती हूँ कि अगर आपरेशन कामियाब न रहा तो....? नहीं एहसान ? मैं अभी नहीं मरना चाहती। अभी मेरी उम्र ही क्या है। मैं अस्पताल से निकलकर एक बार फिर ओकायामा

पार्क में बाहर के खुले, नीले आसमान के नीचे, तुम्हारे साथ घूमना चाहती हूँ, और चेरी के गुलाबी फूलों के बोझ से झुकी हुई टहनियों को झूमते देखना चाहती हूँ। अभी तो पहली बर्फ़ भी नहीं गिरी। अभी जंगल के रास्तों को सफ़ेद मख़मल ने नहीं ढँका। अभी मुझे मरना नहीं है....'

'डिम्पिल, कैसी बातें करती हो। तुम कल भली चंगी होगी।' मैं उसके बालों में उँगलियाँ फेरते हुए तसल्ली देने लगा। डिम्पिल की आँखों में आँसू थे, और उसके मुरझाए होंठ कँपकँपा रहे थे।

"शाम को मेस पहुँचा तो पता चला कि कूच का हुकुम आ चुका है और दूसरे दिन हम दस बजकर पैंतालीस मिनट पर ओकायामा से टोकियो रवाना हो जाएँगे। मैं अजीब कशमकश के आलम में एक जगह बैठ गया। मेरे दोस्त ज़रूरी लेने-देने और खरीदारी के लिए बाहर गए हुए थे और कुछ साथी अपने-अपने कमरों में सामान वग़ैरा बँधवा रहे थे। अब क्या होगा? डिम्पिल का क्या बनेगा? यही सवाल थे जो मेरे दिमाग़ में बार-बार चक्कर लगा रहे थे और जिनका मेरे पास कोई जवाब न था। मैं यहाँ रुक न सकता था। फ़ौजी हुक्म मौत की तरह अटल था। मैंने चाहा भागकर अस्पताल जाऊँ और डिम्पिल को खबर कर दूँ कि मैं सुबह वापस अपने वतन जा रहा हूँ। और उसे छोड़कर जा रहा हूँ फिर शायद जिन्दगी भर उससे मुलाक़ात न हो सके। लेकिन अस्पताल बन्द हो चुका था और डिम्पल खतरनाक हालत से गुज़र रही थी। न जाने ये दुखद सूचना उस बदनसीब पर क्या असर डाले? मैं रुक गया। मैंने उसे फ़ोन भी न किया। वो रात मैंने काँटों पर गुज़ारी।

"सवेरे-सवेरे मेजर बिन ग़ाज़ी आया। वैगन मेस के लॉन में खड़ी करके उतरा और बरामदे में हमें अपना सामान बाहर निकालते देखकर बोला, 'जवानो! तैयार हो न! अरे! वाह! मुद्दत बाद अपने मुल्क की सैर करेंगे।'

"मैं बन्द सन्दूक पर बैठा सिग्रेट पी रहा था और अरदली को बिस्तर बाँधते देख रहा था। मेजर बिन ग़ाज़ी ने मेरे करीब पहुँचकर, मेरे कन्धे पर हाथ रखा और झुककर बोला, 'आपरेशन कामयाब रहा?'

"मुझे उसका ये कहना बहुत बुरा लगा। मैं नहीं चाहता था कि बिन ग़ाज़ी जैसा आदमी डिम्पिल के बारे में मुझसे कुछ पूछे।

'जी हाँ।' मैंने बेरुखी से इतना कहा, और सिग्रेट फेंक दिया। बिन ग़ाज़ी हलकी मुस्कराहट के साथ पीछे हट गया।

'साढ़े दस बजे ट्रक पहुँच जाएगा। तैयार रहना, जवानो!' और वो

वैगन में बैठकर चला गया।

"अस्पताल पूरे दस बजे खुलता था। मैं साढ़े नौ बजे ही लोहे के गेट के बाहर पहुँच गया। मेरे पास रत्नाकली के फूल, जाम और मक्खन के डिब्बों से भरा हुआ एक लिफ़ाफ़ा था। फिर दस बजे अस्पताल का दरवाज़ा खुला और मैं जल्दी-जल्दी बाग़ के लॉन और ठंडे बरामदों से होता हुआ डिम्पिल के कमरे में पहुँच गया। डिम्पिल का बिस्तर खाली था।

मीहो स्टोव जला रही थी। मुझे अन्दर आता देखकर वो खड़ी हो गई और ऐपरन से हाथ पोंछने लगी। मैंने उससे कुछ न पूछा। फूल और लिफ़ाफ़ा तिपाई पर रखा और आपरेशन-रूम की तरफ़ भागा। आपरेशन रूम का दरवाज़ा बन्द था। एक नर्स ने अन्दर जाते हुए बताया कि रोगी को बेहोश किया जा चुका है। मैं हारे हुए जुआरी की तरह बरामदे के बेंच पर बैठ गया। सामने मेहराबी दरवाज़े के बीच में टँगी घड़ी में दस बजकर दस मिनट हो रहे थे। मैं जल्दी से उठा और डिम्पिल के कमरे में आया। मैंने रत्नाकली के फूलों को तिपाई से उठाया और डिम्पिल के सिरहाने एक तरफ़ बिखेर दिया। मीहो पट्टी से लगी चुपचाप खड़ी थी।

'मीहो ! हम लोग वापस जा रहे हैं।'

'मासूम लड़की मुझे फटी-फटी निगाहों से घूरने लगी।

'कब ?'

'अभी, अभी ! मैं तुम्हें अपने देश का पता लिखे देता हूँ। मुझे डिम्पिल की खैरियत लिख भेजना, और जब डिम्पिल का आपरेशन हो चुके तो उससे कहना, तुम्हारा नाकाम एहसान अपने वतन जाते हुए तुम्हें बहुत याद कर रहा था और वो, उसकी माँ, उसकी बहनें, उसके खेत, अमरूदों के बाग़ और कुआँ सब उसका इन्तज़ार करेंगे।'

"मैंने काग़ज के एक पुर्ज़े पर अपना पता लिखा। रत्नाकली के फूलों को चूमा। मीहो मुझसे लिपट गई। उसकी आँखों में आँसू थे।

'अरे पगली ! बिला वजह रो रही है। सिपाही तो एक न एक दिन चले ही जाते हैं।'

"और मैं अपने आँसू पोंछता हुआ, तेज़-तेज क़दमों के साथ कमरे से, बरामदों से, बाग़ से और फिर अस्पताल से बाहर आ गया। मेस में पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद हमारा ट्रक लॉन में आकर ठहर गया। हमने जल्दी-जल्दी सामान रखवाया और ओकायामा रेल्वे स्टेशन की तरफ़ चल पड़े।

"लम्बी गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर तैयार खड़ी थी। सिपाहियों ने अपने-अपने डिब्बों को फूलदार कागज़ की झंडियों और रंग-बिरंगे गुब्बारों से सजा रखा था। लोग दोस्तों को बिदा करने काफ़ी संख्या में आए हुए थे। अमरीकी और ब्रिटिश सिपाही कैनटीनों पर खड़े अपनी दोस्त जापाना लड़कियों के साथ चाय पी रहे थे और घुल-मिलकर बातें कर रहे थे। अपना सारा सामान अन्दर रखवाकर, मैं सिग्रेट सुलगाए दरवाज़े के बाहर खड़ा था और निरर्थक दृष्टि से लोगों को तक रहा था, जो बड़ी गर्मजोशी से हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। अभी गाड़ी छूटने में पन्द्रह मिनट बाक़ी थे। आर० टी० ओ० के दफ़तर से अस्पताल फ़ोन किया। वार्ड सुपरिंटेंडेन्ट ने मीहो को बुलाया।

'हलो मीहो, आपरेशन कामयाब रहा?' मेरा दिल हलक़ के करीब पहुँचकर फड़क रहा था। मीहो की कमज़ोर आवाज़ सुनाई दी। उसने बताया कि आपरेशन अभी खतम नहीं हुआ। मैं दोनों बाज़ू लटकाए दफ़तर से बाहर आ गया। सिगनल गिर चुका था और डाइनिंग-रूम के दरवाज़े खुल रहे थे और बन्द हो रहे थे। लोगों का शोर ज़्यादा हो गया था। इंजन ने पहली सीटी दी।

"लोगों में हलचल मच गई। लड़कियाँ अपने-अपने परदेसी दोस्तों के और क़रीब आईं।

"इंजन दूसरी बार चीखा और लड़कियों ने बाहें दोस्तों के गले में डाल दीं अपने बिछड़ने वाले और फिर कभी न मिलने वाले अमरीकी, ब्रिटिश, हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी दोस्तों से लिपटकर रोने लगीं। इंजन ने तीसरी सीटी के बाद भाप के पुरशोर बादल छोड़े और गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आगे की तरफ़ खिसकने लगी। सिपाही डिब्बों की खिड़कियों से आधे बाहर निकल आए और ख़ाकी रूमाल हिलाने लगे। प्लेटफ़ार्म पर भीड़ पीछे की तरफ़ सिमट गयी और लड़कियाँ, लड़के, बूढ़े, बच्चे, जवान सभी ग़मगीन निगाहों और काँपते हाथों से रंग-बिरंगे रूमाल फ़िज़ा में लहरा-लहराकर रुखसत होने वालों को 'खुदा हाफ़िज़' कह रहे थे। अमरीकी सिपाहियों ने भर्राई हुई आवाज़ लहरों पर मशहूर बिदाई का गीत शुरू कर दिया।

'होम....स्वीट होम!'

"उनकी आवाज़ें भीगी हुई थीं और आँखों में आँसू थे। गीत के लम्बे और गहरे स्वर दिल को उदास ख़ामोशी से घेर रहे थे। उस ख़ामोशी में घर छोड़ने का ग़म भी था और घर में दाख़िल होने की उमँग भी थी। प्लेटफ़ार्म पर सन्नाटा-सा छा गया। बूढ़ों की आँखों में आँसू आ गए; लड़कियाँ सिसकियाँ भरने

लगीं। गाने वाले भी रो रहे थे, उनकी आँखों से अजनबी देश की गलियों को छोड़ते हुए ग़म के आँसू बह रहे थे। वो अमरीकी थे, ब्रिटिश थे, पाकिस्तानी थे। सभों के सीनों में एक ही दर्द चमक उठा था।

'घर....प्यारे घर।'

"घर किसको प्यारा नहीं—और फिर हमारा घर—जहाँ कटाई के दिनों में किसान पकी हुई फ़सलों को देखकर ढोल के ताल पर झूमर डालते हैं। जहाँ हमारा अमरूदों का बाग़ था, कुआँ था और जहाँ डिम्पिल—वो बदनसीब जापानी लड़की आना चाहती थी।

"गाड़ी प्लेटफ़ार्म छोड़ती गई। लहराते, बल खाते, रेशमी रंगीन और भीगे हुए रूमाल निगाहों से दूर हो रहे थे, चेहरे धुँधला रहे थे........दूर दूर....।

"ओकायामा बहुत पीछे रह गया। टोकियो पीछे रह गया, सिंगापुर पीछे रह गया और हमारा जहाज़ बंगाल की खाड़ी के सियाह पानी को चीरता हुआ अरब सागर के शान्त पानी में आ दाखिल हुआ। मेल ने दूसरे दिन मुझे गुजरात पहुँचा दिया। वहाँ से मैं ताँगे पर सवार हुआ और डेढ़ घंटे में अपने घर उस क़स्बे में आ पहुँचा और जब वहाँ पहुँचा तो ज़र्द रंग का एक मैला लिफ़ाफ़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा था जिस पर जगह-जगह के डाकखानों की मुहरें लगी हुई थीं, लेकिन मैं ओकायामा का टिकट फ़ौरन पहचान गया। मैंने काँपती हुई उँगलियों से लिफ़ाफ़ा चाक किया। ये मीहो का खत था। टेढ़े-बेंगे अंग्रेजी अक्षरों में उसने लिखा था.

'जनाब !

आपरेशन कामियाब रहा। मगर उसी शाम मेरी प्यारी बहन मर गई। वो दिन-भर बेहोश रही और बेहोशी में उसने कई बार आपका नाम लिया। हम बड़े दुखी हैं, जनाब ! मेरी बूढ़ी माँ, और दादाजान आपको झुककर आदाब कहते हैं। मेरी बहन का कमरा उसी तरह खाली है।

—मीहो।"

इतना कहकर मेरा दोस्त खामोश हो गया और खिड़की के बाहर देखने लगा। उसका पाइप उसके हाथ में था और वो बेखयाली में जले हुए तम्बाकू को अँगूठे से दबा रहा था।

बाहर आसमान पर बादल छाए थे और जनवरी की पतझड़ की हवा चलने लगी थी। चरवाहे अपने गल्लों को लिए नहर की पटरी-पटरी घरों को जा रहे थे।

———

सावित्री

जमीला हाशमी

मंदिर की घंटियाँ एक-सी बजे जा रही हैं और नीचे-नीचे झुकते आते बादलों में शाम का अँधेरा हवा के साथ घुल रहा है। खिड़की के सामने आम की डालियों में बड़ी मध्यम साँय-साँय हो रही है, जैसे मंदिर की पूजा में पत्तों की प्रार्थना भी मिलना चाहती हों। दूर किसी दरख़्त पर कोयल बोल रही है. उसकी 'कूहू-कूहू' की गूँज जब थम जाती है तो शाम और भी सुनसान लगने लगती है। भीगे पत्तों पर बूँदें टप-टप, हौले-हौले यूँ गिर रही हैं, जैसे अँधेरे में क़दम उठाता कोई राह तलाश करना चाहता हो। भला राहें ढूँढ़ने से भी कभी मिली हैं, और फिर अन्धकार में राह तलाश करना तो यूँ है जैसे कोई उलझे तागों को अलग-अलग करना चाहे।

"बिटिया!"

"क्या है, मोहन दादा?"

"कुछ नहीं। यूँही तुम्हें देखने चला आया था। कितना अँधेरा है और ठंड है। चाय नहीं पियोगी।"

"नहीं, दादा।"

जब मैं मुड़े बिना, उसकी तरफ़ देखे बिना, उसे मोहन दादा कह देती हूँ, तो उसे पता चल जाता है कि मेरे मन पर उदासी का, अकेलापन का, अपनी ग़लतियों और जाने काहे-काहे का बोझ है। मुझे मालूम है अब अपने कमरे में जाकर वह लंबी-सी माला पर 'ओम शांति ओम शांति' का जाप करेगा, खाट पर बैठ कर आहें भरेगा और उन सब शक्तियों को बुरा भला कहेगा, जिन्हें मैंने

वक़्त पर ठोकर मारी थी। पर प्रेम की शक्ति क्या इतनी बड़ी शक्ति है ? और होता यूँ है कि जब तुम अपने गिर्द सारे महलों को एक ही ठोकर मारकर गिरा दो, और तुम्हें अपनी शक्ति पर मान हो और तुम्हारे गिर्द हर तरफ़ वीरानी हो तो तुम्हें पता चलता है कि........। नहीं, कुछ नहीं, कुछ पता नहीं चलता। तुम में कुछ पता चलाने की शक्ति रहती ही कब है ? कल सपने में मैंने देखा कि मैं एक पहाड़ की चोटी पर खड़ी हूँ और मुझसे दूर, नीचे स्वर्ग है। लोगों के चेहरे हँसते हुए और खुश हैं। भीड़भाड़ और मेला है, चहल-पहल और रौनक़ है। बच्चे रंग-बिरंगे कपड़े पहने माओं के साथ उछलते-कूदते चले जा रहे हैं। मर्द अपनी औरतों को लिये घूम रहे हैं। औरतें—जिनके चेहरों पर सुकून है, फैली हुई ज़िन्दगी का एहसास है, जिनकी आँखों में सपने हैं, जिनके गिर्द चमक रहे हैं। घरों में रोशनियाँ और खुशी है कोई सपने में मुझसे कहता है—तुम ऊपर ही ऊपर किस स्वर्ग को ढूँढ़ने जा रही हो। स्वर्ग तो बहुत नीचे है, वो जहाँ से तुम आगे निकल आई हो। और मैं चोटी से उतरने और उस स्वर्ग की तरफ़ जाने की कोशिश करती हूँ तो गिर जाती हूँ—नीचे ही नीचे। जब मुझे होश आया तो मोहन दादा मुझे हिलाकर कह रहा था, "बिटिया, सोते में डर गई हो। भगवान का नाम लो, पानी पियो।" फिर वो बहुत देर तक बैठा मंत्र पढ़-पढ़कर मुझ पर फूँकता रहा और जाने मुझे कब नींद आ गई।

सवेरे चाय पर मोहन दादा ने मुझसे कहा, "भयानक सपने देखकर आदमी का मन कैसा सिकुड़ता है। आज मंदिर में जाओ और भगवान से शक्ति माँगो; प्रार्थना करो।"

उसे अच्छी तरह पता है कि मुझे न भगवान पर यक़ीन है न किसी शक्ति पर। मैं न कभी मंदिर में गई हूँ और न प्रार्थना करूँगी ! मुझे भगवान से कुछ नहीं लेना। मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। मंदिर की घंटियों को बजने दो, कीर्तन के समय साधुओं को गाने दो। अनदेखी, अनजानी शक्तियों को बुलाया जाने दो।

बादलों में अँधेरा घुल गया है। कोयल की कूक थम गई है। हवा डालियों में से बैन करती गुज़र रही है। भीगे पत्तों पर बिना रुके बूँदें पड़ रही हैं। धरती की कुँआरी बास हौले-हौले बूँदों में मिली बहती जा रही है।

"सावित्री।"

मुझे किसी ने पुकारा है, ये पुकार तो बहुत दूर से आती जान पड़ती है। सालों के ऊपर से, बहुत पीछे से, बहुत नीचे से। ये आवाज़ें और चापें जो मेरा

पीछा कर रही हैं। असल में मेरा वहम है; इनका और मेरा कोई रिश्ता नहीं, मेरा तो किसी चीज़ से भी कोई रिश्ता नहीं।

सर्दियों की शामों को जब बादलों में से कोई तारा दिखाई न देता और माँ रसोई में लगी होती तो मोहन दादा अपनी कोठरी में आग के पास बिठाकर हमें कहानियाँ सुनाता। मुझसे कहता, "बिटिया आग में देखो। बड़ी होकर तुम्हें अग्नि की पूजा करनी होगी, ध्यान लगाकर, आँखें बन्द करके, हाथ जोड़कर। अग्नि शक्ति है, अग्नि देवी है, उसे प्रणाम करो। अग्नि पवित्र करती है।" और हम सब कहानी सुनने के लालच में अग्नि को प्रणाम करते।

मैं तो खुद अग्नि हूँ, जिसने अपने गिर्द हर चीज़ को जला दिया है। मैंने अपनी सारी कमज़ोरियों को राख कर दिया है और अब मैं इस राख में दबी अकेली चिंगारी हूँ जिससे न किसी को गर्मी पहुँच सकती है और न ही रोशनी। मैं तो अपने गिर्द के अंधकार को भी रोशन नहीं कर सकती।

"मोहन दादा!"

मगर वो कमरे में जाप कर रहा होगा और ये पुकार मेरे होंठों को कहाँ छू सकती है। मैं किसी को भी पुकार नहीं सकती।

मोहन दादा सदा की तरह कहानी सुनाने लगेगा, "देखो बिटिया, तुम सावित्री इसलिए हो कि तुम देवताओं से भी लड़ सकती हो। तुम तो मौत के देवता यम का पीछा कर सकती हो, तुम अँधेरी राहों और मौत की वादियों के यम से अपनी बात मनवा सकती हो। धन्य, धन्य सावित्री!"

काश, मैं उसकी कोठरी में बैठकर बीते दिनों की तरह अपने सावित्री होने पर यक़ीन कर सकती। पर समय बीत चुका है। वक़्त और ज़माना पानी की लहरों की तरह मेरे ऊपर से गुज़र गए और मुझे मालूम है कि मैं सावित्री नहीं हूँ क्योंकि कोई सत्यवान मेरी राहों से नहीं गुज़रा और मैं सदा की बुज़दिल, सदा की डरपोक। मैं किसी सत्यवान को ढूँढ़ने निकल न सकी, भला यम के पीछे क्या जाती!

इश्क़ मौत की तरह ज़बरदस्त है।

कहानी सुनते-सुनते मैं पूछा करती, "क्यों दादा, भला सावित्री इतने अँधेरे में बादलों के ऊपर से गुज़रकर देवता के पीछे कैसे गई थी?"

और मोहन दादा बिलकुल मेरे कान में कहता, "सत्यवान को दूत ले गए थे, और वो उसका पति था, उसकी माँग का सिंदूर, उसकी दुनिया की रोशनी, उसका सुहाग।" इतना कहने के बाद मोहन दादा के नथने फूल जाते और हाथ जोड़कर आँखें बन्द करके वो श्लोक पढ़ने लगता जो इस क़िस्से का असल हिस्सा

थे। आखिर में उसके हाथ खुलकर ढीले पड़ जाते और वो उन्हें घुटनों पर रखकर कहता, "सावित्री धन्य थी, देवताओं ने भी उसके सामने हार मान ली।" जब मुझे अपनी ताकत को आज़माने के लिए कोई देवता न मिले तो मैंने सत्यवान से ही मुक़ाबले की दिल में सोच ली। मैं सावित्री जो थी।

जब पहले पहल मुरलीधर मुझे मिला तो ऐसा लगा जैसे मेरे अन्दर की गिरहें खुल रही हैं, मेरी आत्मा फैल रही है, मैं हवा के गीतों और पत्तों की सर-सराहट में मिल रही हूँ। मैं अगर अपने बाज़ू बढ़ाऊँ तो सारी शक्तियाँ सिकुड़कर मेरे बाज़ुओं में आजाएँगी। माँ उन दिनों रसोईघर के लंबे दालानों में फिरती, मेरी तरफ़ बड़ी हैरत और तअज्जुब से देखती। बाबा के मरने के बाद उसने मुझसे सिर्फ़ एक बार कहा था, "सावित्री, इस घर का मान और इसकी शान तुम्हारे दम से है। तुम्हारे भाई तो बुरा भला जो करें, मैं ज़िम्मेदार नहीं। पर तुम लड़की हो, आज़ादी से जो जी चाहे सो करो, पर मेरा खयाल रखना। मेरे अंग-अंग में एक गीत रच रहा था। मुरलीधर से बात करने में मुझे लगता, जैसे कोई मुझे सितारों के हिंडोले में झुला रहा है। मेरा भेद सीप की तरह मेरे अन्दर बढ़ रहा था। ऐसे मोती की तरह जिसे मैंने हरएक की नज़रों से छिपाने की कोशिश की।

जाने आज मुरलीधर कहाँ होगा! अपने बाल-बच्चों में घिरा, अपनी दुनिया में लगा, उसे क्या मालूम कि एक अकेले घर के अँधेरे में जब बहुत-सी चापें और साये और वहम मेरा पीछा कर रहे हैं उस वक़्त मुझे वही याद आ रहा होगा, क्योंकि मुरलीधर को भी मैंने सत्यवान नहीं समझा। मुझे अपने ज़ेहन पर अपनी लियाक़त पर नाज़ था। कालेज के बहस-मुबाहसों में मैंने सदा मुरलीधर की मुखा-लिफ़त की है। हमेशा उसके खिलाफ़ खड़ी हुई हैं। जोश से, इल्म से, ताक़त से मैंने उसे हराने की कोशिश की है और आखिर में हार कौन गया है?

मुरलीधर की वो मुस्कराहट, जिसमें धीरज था और यक़ीन था। मुझे उसके चेहरे में सब से ज़्यादा ये मुस्कराहट ही भाती थी और उसी को मैंने मारना चाहा है। आज सोचती हूँ तो लगता है, मर्द तो बच्चा होता है जिसकी बात मान जाओ तो उसे तसल्ली होती है, वो अपनी बरतरी को टूटते देखना नहीं चाहता, वो मुहब्बत में मार खा सकता है। उसका घमंड न रहे तो प्रेम और चाहतों और हरएक चीज़ से उसका यक़ीन उठ जाता है।

मैं अपनी जीत में गुम मुरलीधर पर अपना अधिकार समझती रही।

फिर जब कालिज का ज़माना खत्म हो गया और मैं हर दिन ये इन्तज़ार

करती थी कि वो आएगा और कहेगा, "सावित्री, अब हम और तुम सदा के लिए इकट्ठे और एक ही राह पर चलेंगे।" और फिर यूँ हुआ कि उसने कहा, "सावित्री, तुम मेरी बेहतरीन दोस्त और साथी हो, तुम्हें ये सुनकर ख़ुशी होगी कि मैं कमला से शादी कर रहा हूँ। बोलो, तुम्हें ख़ुशी नहीं हुई। कमला तो तुम्हारी भी दोस्त थी। वो बहुत पढ़ी लिखी नहीं, तुम्हारी तरह बेतहाशा बहस-मुबाहसों में नहीं बोल सकती, पर रसोई घर में लग सकती है और उस धीरज और मुहब्बत के साथ बाल-बच्चों को पाल सकती है जिससे मेरी माँ ने मुझे पाला है। क्यों, क्या मैंने ग़लत लड़की चुनी है?"

मैं अँधेरे में थी और वो लैम्प की रोशनी में था। शाम गहरी थी और घर में माँ के सिवा कोई न था। उसकी आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं और वो अँधेरे में मेरे उड़ते हुए रंग को नहीं देख सका था। मेरे हाथ-पाँव ठंडे हो रहे थे और सर्दी के होते हुए भी मेरे माथे पर पसीने के कतरे थे।

मुझे बहुत देर चुप देखकर उसने कहा, "हाँ, तो बताओ, सावित्री! कमला कैसी रहेगी?" मैं इस मामले में तुम्हारी राय को अपनी माँ की और बहनों की और बाक़ी दोस्तों की राय से अहम समझता हूँ। तुम्हारी 'हाँ' और 'ना' पर ही सारी बात तय करूँगा। बताओ ना?"

तब मैंने अपने आप को समेटा। अपने टूटे घमंड के टुकड़े और अपने दिल की किर्चें, अपना दिमाग़ का फैला हुआ कूड़ा-करकट और ऐसी आवाज़ में जो मुझे अपनी नहीं पराई और किसी और दुनिया से आती लगती थी, कहा, "तुम्हारे लिए कमला से अच्छी और कौन-सी लड़की हो सकती है। मुझे तो ख़ुद कमला बहुत अच्छी लगती है। परमात्मा तुम्हें सफल करें।"

मुरलीधर ने ऐसी ठंडी साँस भरी जैसे इतमीनान और सुकून की आख़िरी हदों पर खड़ा होकर स्वर्ग को पाकर आदमी भरता है और कहने लगा, "सच पूछो तो, कमला मुझे सदा से बहुत अच्छी लगती रही है—एक तरह का प्रेम ही कह लो, पर ये एहसास ही था। कमला की आँखें बड़ी-बड़ी नहीं हैं, पर उनमें हया है, उसकी आवाज़ में झिझक है, मुझे ऐसी औरतें शुरू से ही बहुत पसन्द हैं, धीमी-धीमी रुकी-रुकी सी।"

वो बहुत देर कमला की बातें करता रहा और फिर चला गया। वो अपनी बातों में इतना खोया था कि उसे मेरे कम बोलने का पता ही नहीं चला।

उस रात मैंने रो-धोकर अपने दिल को तसल्ली नहीं देनी चाही। मैंने कुछ सोचा भी नहीं, पर मैं सारी रात जागती रही और मैंने अपने-आप को बहुत लानत-

मलामत की और अपनी सारी ताक़तों को फिर से इकट्ठा किया। ज़िन्दगी आखिर संघर्ष ही तो है, चाहे देवताओं से हो या आम आदमियों से, चाहे अपने आप से।

मुरलीधर एक बड़े मुहकमे में नौकर हो गया। कमला जब कभी उसके साथ मुझसे और माँ से मिलने आती तो मुझे यूँ लगता जैसे दोनों मुझे टूटा हुआ देखने आये हों। मुरलीधर ने आखिर मुझसे किन हारों का बदला लिया था। आखिर में जीत मर्द ही की होती है।

आज अपने साथ हिसाब-किताब करती हूँ तो लगता है कि मुझमें धीरज नहीं था। मुझमें अपनी हार मान लेने की शक्ति नहीं थी। मुझमें अपने को किसी भी मर्द से कम जानने का साहस नहीं था।

आम के बौर की खुशबू मेरे बालों में, मेरी साँस में, मेरे कमरे में, हर तरफ़ फैली है। हाथ बढ़ाती हूँ तो उँगुलियाँ फैले पत्तों से छू जाती हैं और एक बूँद टप से मेरे हाथ पर आन पड़ी है। ये किसका आँसू है। मैं जो आप शक्ति हूँ, आप जप और आप तप हूँ, आप राधा और भगवान हूँ जिसे हर चीज़ से ज़्यादा अपने-आप पर यक़ीन रहा है।

मगर नहीं, ये झूठ है। भगवान तो जानता है।

जब मुरलीधर का ब्याह हुआ तो मैंने फिर देखा कि माँ मेरी तरफ़ बड़ी गहरी नज़रों से देखती, उसके लहजे में दुख के साथ-साथ एक तसल्ली-सी होती। उन दिनों मेरी छोटी बहन कुन्ती ने हाई स्कूल पास किया था और हमारे रिश्ते के एक भाई के दोस्त से उसका ब्याह भी होनेवाला था। माँ दबी ज़बान से कहती, "मेरा तो जी चाहता था, पहले तेरे हाथ पीले करती, तेरी बारी आती, पर अपना-अपना नसीब है। तू इतनी पढ़ी-लिखी है। मैं तो तुझसे ज़बरदस्ती भी नहीं कर सकती। फिर तेरी तरफ़ से तो यूँ भी मुझे कोई फ़िक्र नहीं। कुन्ती के जोड़ों में किनारी टाँकते वक़्त वो साड़ी के पल्लू से अपने आँसू पोंछती और बातें करती जाती। मैं उन दिनों अपने-आप से बेजार ज़्यादा से ज़्यादा खुश होने और ख़ुश रहने की कोशिश करती। कुन्ती तो मुझसे बहुत छोटी थी; गुड़िया-सी जैसे छुई-मुई का पौदा हो। जब वो दुल्हन बनी तो उसकी आँखें और भी बड़ी-बड़ी लगती थीं। उसके चेहरे पर ख़ुशी की एक चमक थी जो अन्दर से पैदा होती है। जब उसको बिदा कराया जाने लगा तो वो हौले-हौले रो रही थी। उसकी आँखों का काजल उसके चेहरे पर बहता जा रहा था और माँ उससे कह रही थी, 'कुन्ती, देख, इससे सिंगार बिगड़ता है। तू कोई अनोखी जा रही है ! सभी को तो बिदा होकर जाना पड़ता है। देख, रो नहीं।" मैं इस सारे मेले में जैसे भटकी हुई आत्मा

हूँ। बरामदे के एक खम्भे के साथ लगकर मुँह छिपाए खड़ी थी। दूल्हा बड़ा खुश-खुश, हारों और फूलों में दिखाई भी नहीं देता था और फिर कुन्ती पर से रुपयों की बारिश करते वो लोग उसे अपने साथ ले गए और कातिक की हवा के साथ, सन्नाटा हमारे घर में घूमता रहा। ये वीरानी बाहर नहीं, मेरे दिल के अन्दर थी। सारी चापें जो मैंने भुला दी थीं, मेरे पीछे एक जगह तक आतीं और फिर बाहर ही से लौट जातीं और आते क़दमों की चाप से ये लौटते, दूर हँसते क़दमों की चाप ज़्यादा उदास करती थी।

मगर मैंने कहा, "मैं तो आप शक्ति हूँ, मैं तो देवताओं से भी अपनी बात मनवा सकती हूँ।"

सारे देवता जो मेरी माँग का सिंदूर थे और जिनके पाँव की धूल मैं अपने माथे पर चढ़ाती और जिनका इन्तज़ार मैं उनके घर में करती ; कम बोलने और धीरज से बात करनेवाली लड़कियों की तलाश में आकाश की दूसरी तरफ़ निकल गये। एक ऐसे हीरे की तरह जिसके ख़रीदने की ताक़त किसी में न हो। सबने मेरी तरफ़ देखा है, और फिर दूसरी तरफ़ खिंच गये हैं।

"मोहन दादा!"

"क्या है बिटया?"

"तुमने मुझे ये कभी क्यों नहीं बताया कि सत्यवान कौन था जिस पर सावित्री मर मिटी थी।"

"अरे, अरे बिटिया! छुटपने से आज तक तो तुम्हें कहानी सुनाता आया हूँ और अभी तक तुम्हें ये भी पता नहीं चला कि वो तो बड़ा मामूली आदमी था। लकड़ियाँ काटनेवाला। प्रेम की शक्ति महान है, बिटिया! ये प्रेम की शक्ति थी सावित्री में, जिससे उसने देवताओं से भी अपनी बात मनवा ली।"

और फिर यूँ हुआ कि जब भगवान ने सारी शक्तियाँ दीं तो प्रेम की शक्ति देना भूल गया और अब मैं एक ऐसा हीरा हूँ जो पुरानी चीज़ों के साथ ताक़ में सजाया जायगा और लोग कहेंगे कि ये एक ऐसा हीरा है जिसकी क़ीमत कोई न दे सका।

पतझड़ बीत गया है। सारे दरख्तों पर नई कोंपलें और नए पत्ते निकले हैं। मेरे दिल के दुख को कौन जानेगा। मैं एक ऐसी धरती हूँ जिस पर न कभी फूल खिलेंगे और न कोंपलें। भगवान औरत की शक्ति और उसका धर्म किस चीज़ में है?

वीरान घर में जहाँ माँ भी नहीं है, रोशनी भी नहीं; मैं मोहन दादा के क़दमों

की चाप सुन रही हूँ। वो अब हौले-हौले मेरी तरफ़ आएगा और कहेगा, "बिटिया! अँधेरे से रोशनी में वापस आओ, सर्दी से घर के सुकून में चलो, अकेलेपन से तो अच्छा है बातें करें। आओ, मैं तुम्हें कहानी सुनाऊँ, मगर मैं अब उसकी कहानियाँ नहीं सुनूँगी। मैं तो आप कहानी हूँ पर इसका अन्त कौन जाने क्या हो। आनेवाले दिन की बात कौन जानता है।

मंदिर की घंटियाँ बजती जा रही हैं। लोगों को भगवान से बहुत कुछ माँगना होता है ना? मैं क्या मागूँ?

"क्यों मोहन दादा, मैं भगवान से क्या मागूँ?"

और मोहन दादा भी सोचने लग गया है कि मैं भगवान से क्या मागूँ।

———

दीवानी आपा

अशरफ़ सुबूही

सन् सत्तावन की अफ़रा-तफ़री के बाद जब दिल्ली में फिर अमी-जमी हुई तो उस वक़्त भी दिल्ली वालों को अपनी तहज़ीब और अपने रस्मो-रिवाज पर नाज़ था। उस ज़माने में जब कि शहर वाले अपने पुराने अन्धविश्वासों और संस्कारों की दुनिया में बसते थे। एक बुढ़िया ढीले पायँचों का लाल पाजामा, गोटा टँका हुआ सब्ज़ कुरता धनुक लगी हुई पहने, लाल दोपट्टा ओढ़े, पोर-पोर छल्ले, रंग-बिरंग की कोहनियों तक चूड़ियाँ, गले में पीतल की चम्पाकली, गिलट का हार, माथे पर राँगे का टीका, घूँघट निकाले, सदा सुहागन बनी हुई फिरा करती थी। जिधर निकल जाती लड़कों की बरात साथ होती। "लाल मुरग़ी चोट्टी, सफ़ेद मुरग़ा हड़प," के आवाज़ें पड़ते। ये जवाब में, "तेरे बाप का मुरग़ा हड़प, तेरी माँ की मुरग़ी हड़प," कहती, पत्थर मारती, कभी रोती कभी हँसती। ज़्यादा तंग होती तो किसी मकान में घुस जाती, "ऐ आपा! मुर्वों ने मेरी बालियाँ नोच लीं। आपा जवानामर्ग पैसा माँगते हैं, दोगी! आऊँ?" लोग उसे पागल फ़क़ीर समझते थे। हर जगह खातिर मदारात होती। खाना पेश करते, पैसे देते, दुआएँ मँगवाते। जब तक उसका जी चाहता बैठी रहती, 'ज़फ़र' की ग़ज़लें गाती। फिर अचानक उठ बैठती। गली में जाकर बच्चों को पुकारती, "अरे क्या सब मर गए, मुहल्ला सूना हो गया।" और खुद, "लाल मुरग़ी चोट्टी-सफ़ेद मुरग़ी हड़प," की आवाज़ लगाती। फिर वही गुल, वही शोर, वही कोसने, वही गालियाँ।

सारे शहर में ये दीवानी आपा मशहूर थीं। कहते हैं कि जब तक उनके

हवास ठीक थे, दो चार महीने से ज़्यादा कभी बेवा न रहीं। दुलहन बनने का ऐसा शौक़ था कि इधर एक का चालिसवाँ हुआ, उधर दूसरा तैयार। बाप उनके बादशाही प्यादे थे। पहली शादी उनकी भूरे ख़ाँ, चाबुक सवार से हुई थी। सूरत का यह हाल था कि कोई उनके हाथ के टूटे हुए बेर न खाए। मगर बनाव-सिंगार का शौक़ और सब से ज़्यादा, तक़दीर ऐसी हसीन थी कि भूरे ख़ाँ जैसा बाँका-तिरछा जब तक जिया कौड़िया ग़ुलाम रहा। दस बरस बड़े चैन से गुज़रे। इत्तिफ़ाक़ से महाराजा अलवर ने एक मुँहज़ोर बदरकाब घोड़ा तरबियत के लिए उनके सिपुर्द किया। रोज़ाना सवेरे उसे फेरने ले जाया करते थे। उस दिन जो गए तो घर में लाश ही आई। आपा को जितना सदमा होता कम था। राज लुट गया। सुहाग में आग लग गई। ऐसी धम होकर बैठीं कि दो बरस तक कुंबे-रिश्ते वाले बीसियों मर गये, पास-पड़ोस में सैकड़ों शादियाँ हुईं, लेकिन ये घर से बाहर न निकलीं।

भूरे ख़ाँ को मरे हुए दो बरस हुए थे कि ख़ुदा जाने उनके मुर्दा दिल में कैसी ज़िन्दगी पैदा हुई। ख्वाब में शैतान ने उँगली दिखा दी या औलाद का शौक़ चर्राया क्योंकि उन दो बरसों में आठ बच्चे हुए और आठ के आठ चिल्ले के अन्दर ही अन्दर मर गये। शायद मुहल्ले वालियों का निपूती और कोखजली कहना उन्हें नहीं अच्छा मालूम होता होगा, कि शौहर का छोड़ा हुआ चाबुक सवारों की गली वाला आलीशान मकान बेचकर रजना बेगम की हवेली जा रहीं और एक नौजवान बाबू से निकाह कर लिया। ग्यारहवें महीने शहर में हैज़ा का ज़ोर हुआ। बाबू बेचारे की भी मौत आ गई और आपा फिर राँड़ की राँड़ थीं। औलाद का चाव उससे भी न निकला। इद्दत[१] पूरी होते ही तीसरे निकाह का डोल डाला। ये एक परदेसी अधेड़ उम्र का सौदागर था। एक बरस के अन्दर-अन्दर मौत ने फिर चूड़ियाँ तुड़वा दीं। और अब क़ुदरत से लड़ाई शुरू हो गई। बारह बरस में सात निकाह किये मगर न किसी से कोई बच्चा हुआ न बारह महीने से ज़्यादा कोई ज़िन्दा रहा।

पैसे की कमी नहीं थी। जो मरा उसकी जमा-पूँजी उनके पास रही। निकाह एक खेल हो गया था। सात मुर्दे अपने हाथों से उठाए। साल में दो बार माँग उजड़ी और भरी। रँड़ापे और सुहाग में न कोई लज़्ज़त रही थी न तकलीफ़।

१—विधवा होने या तलाक़ होने के तीन महीने तेरह दिन तक औरत दूसरी शादी नहीं कर सकती। इस समय को इद्दत कहते हैं।

दिमाग़ी बीमारी का एक दौरा था, जो दुलहन बनने से कुछ दिन तक दब जाता था। इसलिए उन्होंने बेवा होने की सारी रसमें छोड़ दी थीं। साठ बरस के लगभग उम्र थी, शौहर की मज़ा उठाने का क्या वक़्त रहा था। फिर अपना दिल क्यों मारतीं। जिसकी मौत आती है वो मर जाता है। रंज और ग़म में अपनी ज़िन्दगी उजाड़ना किस खुदा ने बताया है। मरने वाले के साथ सर झाड़, मुँह फाड़कर बैठ जाना आख़िर किस उम्मीद पर ? इस वास्ते अब ये दुल्हन बनी आने-जाने वालियों से एक आख़िरी निकाह की आरज़ू किया करतीं। खूबसूरत तो जवानी में भी न थीं। बुढ़ापे में क्या रूप होता। गन्दुमी रंग, गोल चेहरा, छोटी-सी नाक पर बड़ा-सा मस्सा, नथने ज़रा सिकुड़े हुए, मुँह में फ़क़त दो दाँत एक नीचे का और एक ऊपर की किचुली। आँखें बड़ी-बड़ी मगर अन्दर को धँसी हुईं। जवानी में डील अच्छा खासा भारी था और अब भी गदरा है। ठोड़ी और ऊपर के होंठ पर टंडी मिट्टी वाले मर्दों की-सी दाढ़ी मोछें लेकिन बनने सँवरने का इतना शौक़ है कि सफेद और बेटके काड़े कभी पहने नहीं। जब से सर सफेद हुआ मजाल है कि मेंहदी को दूसरे से तीसरा दिन हो जाय। गर्मी हो या जाड़ा, सर से लेकर भौं, होंठ और ठोढ़ी तक मेंहदी थोपी रहती। दाँत थे या न थे मगर क्या मजाल कि रोज़ मिस्सी न लगे, और लाखा न जमाया जाय। काजल आँखों ही में नहीं लगता था बल्कि भवें, गाल और माथे के तिल भी बनाए जाते थे। कुछ दिन से चूड़ियों की ऐसी निराली लत लगी थी कि हर रंग का एक-एक जोड़ा हाथों में ज़रूर रहता था। कहती थीं कि वी ये शगुन की चूड़ियाँ हैं।

एक दिन का ज़िक्र है कि सातवें दुल्हा का बीसवाँ था और आप नहाई-धोई, सर से पाँव तक रंगीन कपड़े पहने, गहने में लदी हुई बैठी थीं कि सुन्दर मशशाता[1], ने झुककर सलाम किया।

आपा बोलीं—गुर्दार ! बड़ी तोताचश्म है। उस दिन से जो गई तो आज सूरत दिखाई।

सुन्दर—बेगम, क्या बताऊँ एक ऐसा ही काम हो गया था जो आना नहीं हुआ।

आपा—हाँ बुवा, मेरा नमक ही ऐसा है। बीसों जोड़े पहना दिये। कड़ों की जोड़ियाँ हाथों में डाल दीं। असल ये है कि तुम लोग होतो बड़ी बेमुरव्वत हो।

सुन्दर—बेगम, क्यों नहीं। आप का नमक बोटी-बोटी में रचा हुआ है।

१—सिंगार करने वाली, नाइन भी हो सकती है।

और सरकार क्या अब और कड़ों की जोड़ी न पहनूँगी !

आपा—बस बातें बनानी आती हैं। मैं तो जानती हूँ कि तुम्हें मेरा ख्याल ही नहीं !

सुन्दर—वाह हुज़ूर, वाह ! वारी जाऊँ, ये क्या आप ने कहा। नई नौ दिन तो पुरानी सौ दिन। अपनी पुरानी सरकार का ख़याल न होगा, तो किसी राह चलते का होगा।

आपा—मैंने कहा आज बीसवाँ तो हो ही गया है। जल्दी फ़िक्र होनी चाहिए। तुम जानो बग़ैर घर वाले के घर क्योंकर हो सकता है ? हज़ारों क़िस्म की बदनामियाँ। वही मसल है कि मारते के हाथ पकड़े जा सकते हैं, कहते की ज़बान नहीं रोकी जाती। और बुआ मेरे इस सुहाग का देखने वाला भी तो कोई हो। फिर मेरा अभी बिगड़ा ही क्या है ? पान जितने चाहो खिला दो, बातें जितनी चाहो बनवा लो। कहो तो सुबह से शाम तक बैठी बनाव-सिंगार किये जाऊँ।

सुन्दर—सरकार ! (बलाएँ लेकर) मैं क्या अन्धी हूँ। बीबी दुनिया में ज़िन्दा दिली का तो सारा मोल है।

आपा—लेकिन अच्छी सुन्दर ! अबके तो देखो दूल्हा दूल्हा हो हो।

सुन्दर—सरकार। अल्लाह मालिक है। वो जगह मैंने ताक रखो है कि बस खुश हो जायेंगी। आप तो मुझे बेमुरव्वत कहती ही हैं मगर ख़ैर हुज़ूर गंगा-जमुनी कपड़े पहनूँगी।

आपा—(छाती ठोंक कर) गंगा-जमुनी, अरी सुन्दर, एक नहीं, गंगा जमुनी के दो जोड़े मेरी तरफ़ से !

सुन्दर—ख़ुदा मेरी सरकार को सलामत रखे। अच्छा हुज़ूर जाती हूँ। परसों जाऊँगी।

आपा—अरी निगोड़ी, ये भी तो कह कि खुशख़बरी लाऊँगी।

सुन्दर—लीजिये सरकार भी कैसी बातें करती हैं। ख़ाली आकर क्या मुझे अपना सर मुँड़वाना है ?

आपा—हाँ। बस समझ गई ना !

आपा ने बटुवे में से एक रुपया निकाल सुन्दर को दिया और वो दुआएँ देती, ये जा वो जा !

तीसरे दिन दोपहर के बाद नमाज़ पढ़कर आपा पनकुट्टी में पान कूट रही थीं। खाना और ऊपर के काम वाली दोनों मामाएँ पास बैठी थीं कि सुन्दर मरशता हँसती हुई आई और लाल काग़ज़ पर लिखा हुआ रुक़्क़ा रेशमी सुर्ख़

रुमाल में लपेटा हुआ आपा के सामने रख दिया। "हुज़ूर मुँह मीठा कराइये। बात भी वो लाई हूँ कि बस, उसके आगे अल्लाह का नाम। और बात क्या आठवें दिन निकाह हो जाएगा।"

आपा ने आईना उठाकर पहले मुँह देखा। माँग पट्टी दुरुस्त की, पान की पीक, जो बाछों तक बह आई थी, रूमाल से पोंछती हुई मुस्कराकर बोलीं, "मैं पढ़ी लिखी हूँ जो रुक्का पढ़ूँ। कुछ ज़बान से कहे तो समझूँ।

सुन्दर—सरकार, ज़बान से क्या कहूँ। अब घंटा भर में दूल्हा वालियाँ आ जायँगी। सब तय हो जायगा। मैं तो साफ़ मामला रखती हूँ। चोर-ढोर सब सामने।

आपा—क्या तमाशे की औरत है। चुड़ैल ने मुझसे पूछा न गाछा। अरी दुल्हन भी कहीं ज़माने में बात करती है। लो शामत, मेरी ही शादी और मैं ही बात करूँ। सात शादियाँ हुईं, एक दफ़ा भी मुझे कोई देखने नहीं आया। मुझे तो शर्म आती है।

सुन्दर—उनका इकलौता लड़का, अल्लाह रखे जवान, चाँद का टुकड़ा, घर के खुशहाल ? उनके हर तरह के अरमान हैं, और सरकार मेरी ! आपको शर्म क्यों आए। अल्लाह ने सूरत-शकल क़द-क़ामत क्या कुछ नहीं दिया है। और उस पर फबन ऐसी कि लाखों में एक !

पकाने वाली—बेगम ! देखने आती हैं तो जम-जम आएँ। बलाएँ लेकर जाएँगी। औरत की तो काठी देखी जाती है। हज़ारों लड़कियों से आप अच्छी हैं।

ऊपर के काम वाली—ऐ बुवा ! दिल्ली का पानी कुछ ऐसा बिगड़ा है कि मेरे आगे के बच्चे हैं और पोपले, सर सफेद, बगुला। दूर क्यों जाओ मेरी नवासी को देख लो, अभी तीन साल हुए कि शादी हुई है। दो बच्चे हुए हैं कि बुढ़िया फूस मालूम होती है। तो क्या दूर पार वो बुढ़िया है ? हमारी सरकार तो बीसों से अच्छी हैं।

आपा—हाँ बुआ, नज़ले की पोट तो मैं बचपन से हूँ। इसी निगोड़ी मारे ने मेरा खोज खो दिया है। भला अभी मेरे दाँत टूटने और बाल सफेद होने के दिन थे ! और मेरा क्या बिगड़ा है, दिल में जवानी के सारे चाव मोजूद हैं।। फिर....तजर्बाकार कैसी ? अभी बच्चा हो जाए तो देखो कैसा पालती हूँ।

सुन्दर—अच्छा बेगम साहब ! लो अब दूल्हा वालियाँ आने वाली हैं। आप तैयारी करें।

ये सुन कर आपा तो कोठरी में गईं और बाहर से आवाज़ आई कि उतरवा लो। सुन्दर दौड़ी हुई गई। मकान तो साफ़-सुथरा था ही। सवारियाँ उतरीं। मामाओं ने अदब से सलाम किया। सदरदालान पर जा बिठाया। इतने में आपा सोलह सिंगार किये घूँघट निकाले झुकी-झुकी आईं और गाओ तकिया से लगकर बैठ गईं। बातचीत शुरू हुई।

सुन्दर—ऐ सरकार, अब सारी बातें तय होनी चाहिये।

दूल्हा वाली—हाँ, हाँ। मगर दुल्हन की तरफ़ से कौन बात करेगा?

सुन्दर—ऐ हुज़ूर खुद बदौलत। अल्लाह रखे अपनी मालिक मुख्तार हैं। (आपा से मुखातिब हो कर)....घर की बड़ी-बूढ़ी कहिये या लड़की, जो कुछ हैं आप ही हैं। बात कीजिये। महर पिटारी, चढ़ावा, बरी वग़ैरा के बारे में तय कर लीजिये।

ये सुनकर आपा ने शर्माकर और गर्दन नीची कर ली।

एक आनेवाली—साहबज़ादी ऐसी क्या शर्म है, ज़रा सर उठा कर बैठो। बात करो।

पकानेवाली—हाँ बुआ, अगले ज़माने की लड़कियाँ ऐसी ही होती थीं।

आपा को ये सुनने की ताब कहाँ थी। मुँह से हूँ-हूँ करके दोपट्टे में से हाथ निकालकर इशारा किया। "सुन्दर मुँह से नहीं फूटती। अगले ज़माने का कौन है?"

सुन्दर—सरकार मेरा तो काला मुँह न कराइये। अगले ज़माने की क्यों होने लगीं। दुल्हन तो माशालाह शहर बरबादी के कुछ ही दिन पहले की पैदाइश है। बस सरकार अब देखा-भाली हो चुकी। ज्यादा ज़िद न कीजिये। चार दिन बाद पेट-भर देख लीजियेगा!

इतने में आपा ने ऊपर के काम वाली मामा को पास बुलाकर कहा कि निगोड़मारी कह दे कि पचास हज़ार का महर होगा। पचीस रुपये महीना पिटारी के खर्च का और मन की बरी। मामा ने पुकारकर समधिनों से ये शर्तें बयान कीं। उन्होंने जवाब दिया कि महर और पिटारी का खर्च जैसा तुम ने कहा मंजूर है! लड़का कुछ ऐसा लट्टू हुआ है कि दोनों शर्तों पर हामी भर लेगा। बरी ज़रूर ज़्यादा है लेकिन खैर नौ मन न सही पाँच सात मन सही! हाँ दूल्हा मियाँ ने अपनी एक शर्त पर बड़ा ज़ोर दिया है।

सुन्दर—बीवी वो भी कह डालियो। दुल्हा ही का तो सारा ज़हूरा है। निबाह तो उन्हीं से होना है।

समधिन—दूल्हा मियाँ कहते हैं कि दोनों वक़्त दुल्हन को बिला नाग़ा मेमों की तरह खट-पट करते सर खोले मेरे साथ हवाख़ोरी को जाना पड़ेगा।

सुन्दर—ए सरकार, ये भी कोई पूछने की बात है। दो दिल राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी?

मामा—मगर हुज़ूर बेपर्दा फिरना कैसे हो सकता है। पालकी न डोली। हमारी बेगम तो दालान से अँगनाई तक कई जगह ठोकरें खाती हैं।

सुन्दर—सरकार, फ़रमाइये?

आपा इन चेमीगोइयों से परेशान थीं। घबराकर बोल उठीं—सुन्दर तो गूँगी ही बनी जाती है। कह क्यों नहीं देती है के वो हवाख़ोरी तो क्या बिलायत भी ले जाएँगे तो बेउज्र चली चलूँगी। दो क़दम उनसे आगे न रहूँ तो कहना।

सुन्दर—सुन लिया?

समधिन--हाँ, सुन लिया।

सुन्दर—सरकारों को मुबारक हो।

मामा—बेगम साहबा पूछती हैं कि फिर क्या ठैरा। यूँ ही मुबारकें देने लगीं?

सुन्दर—ऐ इधर की शर्तें उधर, उधर की शर्तें इधर, मंजूर की गईं बस बात पक्की हो गई!

मामा—तो फिर बरात किस दिन आएगी?

सुन्दर—हुज़ूर अमीर घरानों की शादी है। गुड़ियों का खेल तो नहीं! उनका लाडला बच्चा है। पहले माइयों....बैठाएँगे। मेंहदी, साचक़, निकाह, बिदा, चौथी-चाले सारी बातें होंगी। कुआरा बर यूँ ही थोड़ी मिल जाता है।

मामा—बीबी कहती हैं ये तो मैं भी जानती हूँ। लेकिन चाहती हूँ पहले बिदा हो जाये फिर निकाह। साचक़, चाले वग़ैरा जो-जो वो कहेंगे होते रहेंगे। आखिर मेरे यहाँ भी तो कोई इन्तज़ाम करने वाला हो। तुम समझो कि इतनी रसमों में पूरा खर्च होगा। यहाँ कौन बैठा है जिस पर मुझे भरोसा हो। इतनी बड़ी शादी में बुआ मर्द का होना बहुत ज़रूरी है तो उनके सिवा मेरा हमदर्द कौन हो सकता है।

ये सुनकर हँसी के मारे सारी औरतों के पेट में बल पड़ गये। सुन्दर ने बड़ी मुश्किल से क़हक़हों के तूफ़ान को रोका। शाम हो रही थी। मेहमानों की सवारियाँ डेवढ़ी पर लगी हुई हैं। आपा ने बेचैन होकर सुन्दर से कहा—ख़ाम-ख्वाह लँहगा फड़काती फिरती है। मुझसे कह कौन-सी तारीख़ ठहरी?

सुन्दर—सरकार ! ये जाकर अपने मर्दों से ज़िक्र करेंगी । वहाँ कुन्बे रिश्ते के सारे लोग जमा होंगे । अच्छी बुरी तारीखें देखी जायँगी । और फिर निकाह का दिन तै हो जायगा । आप खातिरजमा रखिये । एक अठवारे के अन्दर-अन्दर खुदा को मंजूर है तो दुल्हन बना दूँगी ।

कुछ तो होते हैं मुहब्बत में जुनूँ के आसार,
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं ।

पहले हिन्दुस्तानियों में और खासकर दिल्ली में बनने-बनाने की बड़ी चर्चा थी । लोगों में ज़िन्दगी थी, ज़िन्दादिली थी । हँसने-हँसाने के लिए बहाने ढूँढ़े जाते थे । किसी बूढ़े को घोड़ी चढ़ाया जा रहा है । किसी बुढ़िया की जच्चागीरियाँ गाई जा रही हैं । जहाँ किसी को अपनी हैसियत, अपनी हालत और अपनी उम्र के खिलाफ़ कुछ करते देखा चार ने मिल कर उसे बना लिया । पाँच सात दिन खूब दिल्लगी रही । उसमें ये पर्वा न थी कि बनने वाले का हश्र क्या होगा । कोई अपने आपे में आगया । किसी के दिमाग़ की चूल और ज़्यादा बिगड़ गई । इस-लिए आपा का निकाहबाज़ी का शौक़ भी काफ़ी तफ़रीह का सामान हो गया था । क़ासिमजान की गली की एक नवाबज़ादी ने जो उनकी बड़भस के अफ़साने सुने तो उन्हें भी आपा से मज़ाक़ की सूझी । अपने यहाँ की कोलिन सुन्दर को मश्शाता बना कर भेजा । डेवढ़ी के नौकर कल्लू के बेटे मटल्लू को दूल्हा किया । बात ठहराई । निकाह का दिन आया । कुछ पड़ोस की कोलिनें कुछ घर की लौंडियाँ समधिनें बनकर चलीं ।

बी आपा के घर भी इसी क़िस्म की पड़ोसिनों की भीड़ थी । आपा दुल्हन बनी, घूँघट निकाले कोठरी में बैठी थीं कि सवारियाँ उतरनी शुरू हुईं । उतरने वाली पहले कोठरी में जाकर झाँकती थी और फिर हँसती हुई दालान में जाकर बैठ जाती थी । रंग-बिरंगे कपड़े, कोई लहँगा पहने हुए है तो कोई सूसी का पाजामा, अजब-अजब वज़ा को समधिनें हैं । एक ग़ुल, एक शोर । एक कहती है—अरी शुबरातन मटल्लू की बहू को भी देखा है ?

दूसरी बोली, "सुन्दर कहती थी के ये तो बरस में दो खसम करे है । क़ब्र में पाँव लटकाये बैठी है और शादी पर शादी किये जाये है ।"

तीसरी बोली, "और दुल्हा की बहन कहाँ मर गई । आये ना ।"

इधर वालियों ने जो सुना तो बिखर गईं । मामा जलकर कहने लगी—नौज ये समधिनें हैं । बेगम के नसीब फूट गये । मुझे तो कोलिनें मालूम होती हैं ।

दूल्हा की बहन जो बनो हुई थी वो तुनककर बोली, "अरी लालो ! इसकी बातें तो सुन कैसा इतराये है। ये बड़ी शरीफ़ज़ादी है न ! ऐसी लटके हैं जैसे उसके लाल लटक रहे हैं।"

सुन्दर ने जो ये रंग देखा तो जल्दी से दूल्हा की बहन का हाथ पकड़ दुल्हन की कोठरी में ले आई, "सरकार ! ये खुदा रखे, दुल्हामियाँ की बहन हैं। इनसे बात करो।"

आपा (शर्माई हुई)—बड़ी हैं या छोटी ?

सुन्दर—ये बड़ी हैं न छोटी। मंझोली हैं।

आपा—रिश्ते की बहन होंगी !

सुन्दर—हजूर रिश्ता की कैसी दुल्हामियाँ के बाप की साली के चचा की जो समधिन थीं उनके बेटे की सलहज के मामूँ की गेलड़ बेटी हैं। ये ऐसा कहाँ का दूर का रिश्ता है जो सगी न कही जाये।

इतने में बाहर से शोहदों की आवाज़ें आईं ! "इलाही साज़गारी हो। आमीन। दुल्हा सतपोता हो आमीन।"

और साथ ही डेवढ़ी पर ग़ुल हुआ कि पर्दा करो। दूल्हा अन्दर आता है। आपा तो निकाह करते-करते मंझ गई थीं, ये नई बात जो देखी कि उनसे कोई पूछने भी नहीं आया और निकाह हो गया। घूँघट में सिसकियाँ ले-लेकर गर्दन हिलाने को तमन्ना रह गई। कलेजा फाड़ कर बोलीं, "अरे सुन्दर कहाँ ग़ारत हो गई। मुझसे कोई जुल तो नहीं खेला जा रहा है। मुझसे बग़ैर पूछे काज़ी ने कैसे निकाह पढ़ दिया ?

सुन्दर आई तो आपा बदहवास थीं। लगीं बुरा भला कहने। मगर सुन्दर ने कहा, "वारी ! आप से पूछने की क्या ज़रूरत थी। आप राज़ी थीं जब ही तो बरात आई। और बेगम कहीं दुल्हनें भी बोलती हैं। लड़के वालियाँ क्या कहेंगी।"

आपा ने दिल में कहा कि हाँ निगोड़ी सच तो कहती है। मेरी रज़ामन्दी से तो ये सब कुछ हुआ है। फिर इस वक़्त मुझसे न पूछा तो कौन सा जुल्म हो गया—अच्छा बुआ मैं राज़ी मेरा खुदा राज़ी।

झूठ-मूठ पर्दा हुआ। दूल्हा मियाँ एक मैला-सा पाजामा पहने जिसके घेर पर दोहरा झूटा गोटा टका हुआ, सफ़ेद मलमल का अफ़शाँ किया हुआ दोपट्टा कमर से लपेटे झूटे लट्ठे का ढीला कलीदार पाजामा जिसका एक पाएँचा सफ़ेद दूसरा नीला, बे गोट का जूता चमकी के काम का, जिसमें पीतल के घुँघरू

दोनों तरफ़ नोक से एड़ी तक लगे मगर एक ही पाँव में। दूसरे में लाल नरी की पुरानी जूती। गेंद के फूलों का सेहरा लटकाये, मुँह पर हल्दी से रँगा हुआ रूमाल रखे तशरीफ़ लाए। दुल्हा की ये हुलिया-देखकर आपा को फिर ताब न रही, "अरे मैंने तो जोड़े के सौ रुपये भेजे थे। वो कुटनी कमबख़्त कहाँ है। पूछो तो सही कि शरीफ़ों के दूल्हा ऐसे ही होते हैं?"

मामा, "बेगम साहब। आप को क्या हो गया है? उनके यहाँ की यही रस्म होगी।

आपा फिर सँभलीं कि हर जगह की रसम अलग होती है। नवाबों में दुल्हा ऐसे कपड़े पहनता होगा और मैंने आज तक किसी कुँआरे से निकाह किया भी तो नहीं जो मालूम होता के दुल्हा की पोशाक कैसी होती है।

आँचलों के साये में दुल्हा मियाँ दालान में मस्नद पर बिठाये गये। दो-चार औरतों ने दुल्हन को सँभाला और वो झुकी-झुकी आकर दुल्हा के सामने बैठ गईं। डोमिनों ने गाना शुरू किया। रीत रस्में होने लगीं। पहले दुल्हन के दोनों हाथ निकाल कर उनमें शक्कर और काले तिल रख दूल्हा को चखाया गया। फिर दुल्हा के हाथ से दुल्हन को खाँड चटाई। दुल्हन ने जैसे ही खाँड चाटने को मुँह आगे बढ़ाया डोमनी ने दुल्हा का हाथ झटक दिया तो बी आपा का चेहरा "तिलंगिनी-काली मिर्चों वाली" बन गया। खाँड आँखों में पड़ी। कल्लों पर पसीना था, तिल चिमट गये। रूमाल से मुँह-साफ़ करना चाहा, पीक निकल पड़ी। उस वक़्त कोई आपा की सूरत देखता। सदक़े की गुड़िया में और उनमें कुछ फ़र्क़ न था। कई रस्मों के बाद सुहाग पड़ा और सिल बट्टा आया। दुल्हा ने मसालह पीसा। पहले दुल्हन की माँग भरवाई। दुल्हन को कँपकँपी और दूल्हा शरीर। सर पर जाने के बजाय हाथ मुँह पर लगा और इस ज़ोर से लगा के बी आपा का एकलौता दाँत झोंटा खा गया। आँखों में बिजली कौंध गई मगर शादी के शौक़ में बेचारी ने उफ़ न की। फिर सात सुहागनें आईं और उन्होंने सरोज लगाया। आरसी मसहफ़ का वक़्त आया। छपरखट तो था नहीं ज़मीन पर ही दोनों को आमने-सामने बैठा, आईना और क़ुरआन बीच में रख दिया। ऊपर से एक तारकशी का दोपट्टा डाल डोमिनों ने कहा, "मियाँ सेहरा उठा डालो और बी बूढ़ी सुहागन तुम भी घूँघट के पट खोल दो।" इधर तो दुल्हा ने बी आपा को देखकर एक क़हक़हा लगाया और उधर बी आपा ने जो आईने पर नज़र डाली तो एक काला भुजंग शेदी बच्चा ज़र्द-ज़र्द टेटियाँ-सी आँखें। होंठ

जैसे गुर्दे। पहिया फिरी हुई नाक। मुँह में से सड़ाँद के भभके आ रहे हैं। एक चीख मारी और ग़श खाके गिर पड़ीं।

कई घंटे के बाद आपा को जो होश आया तो न दूल्हा था न समधिन। बस•उसी वक़्त से दिल का वरक़ उलट गया। भरे घर को छोड़ निकल खड़ी हुईं। सारे दिन फिरा करतीं। बच्चों से छेड़-छाड़ रहती, कोई दीवाना समझता, कोई पागल फ़क़ीर कहता। लेकिन दुल्हन बने रहने का शौक़ मरते-मरते रहा। और सुना है कि लाल कपड़ों ही में उन्हें दफ़नाया भी गया।

बि
न
माँ
गी

मुहसिन शमसी

"तैयार हो जाइये, मिस किटी !"

किटी ने बनावटी तिल चेहरे पर चिपका लिया। लिपस्टिक की हलकी-सी तह और चढ़ा ली और चुस्त लिबास को कुछ ऐसे झटके दिये कि ख़ूबसूरत सीना और भी नुमायाँ हो गया। सैंडिल पर एक सावधानी की नज़र डाली कि कहीं वो ऐन वक्त पर धोका न खा जाए और जब उसे इतमीनान हो गया तो सामने रखी हुई कुरसी पर बैठ गई। वो तैयार थी।

हॉल की बत्तियाँ एकदम मद्धिम हो गईं और पूरी चाँद रात जैसा रूह-पर्वर अँधेरा छा गया। आर्केस्ट्रा ने मद्धिम स्वरों वाला संगीत छेड़ दिया। दिलों की धड़कनें मद्धिम होकर साज़ की ताल के साथ मिलने लगीं और तब रोशनी के बड़े-से दायरे में किटी नाचती हुई सामने आई। हलकी रोशनी में उसका शरीर और भी आकर्षक लग रहा था। मचलते जिस्म और बल खाती बाहों ने निगाहों पर जादू कर दिया था और जब उसने अपना गीत शुरू किया तो महसूस होने लगा कि मुहब्बत के लिए बेताब होकर कोई कोयल अपने साथी को बुला रही हो।

गीत मुहब्बत के मुतल्लिक़ ही था :

मुझसे मुहब्बत करने वाले,
मुहब्बत को न तू गर्म साँसों से भरपूर होंठों में ढूँढ।
न ही जिस्म को भींचकर रख देने वाली बाहों में तलाश कर।
मुहब्बत तो बस दिलों में चमकती रहती है, जैसे मंगेतर की उँगली में रौशन अंगूठी।

मुझसे मुहब्बत करने वाले मुहब्बत को एक रात का सौदा न समझ।

एक झनाके के साथ संगीत खामोश हो गया। हाल में तालियों का शोर बुलन्द हुआ और किटी ने गर्दन झुकाई। एक बार और संगीत छिड़ गया और किटी के होंठ नए गीत से खेलने लगे और वो अपनी नज़रें हाल में बैठे हर आदमी पर बारी-बारी से डालने लगी। होटल में आने वाले हर आदमी को खुश रखना ही उसका काम था, जिसे वो पूरा कर रही थी। नज़रों से नजरें मिलतीं और वासना-भरी मुस्कराहटें उभरतीं और किटी की नज़रें फिसलकर किसी और तरफ़ मुड़ जातीं, और फिर नज़रें एक चेहरे पर ठहर गईं। अजीब-सा चेहरा है, ख़ूबसूरत तो नहीं, मगर सख्त-से चेहरे पर अजीब-सी मासूमियत है। दिल खिचता-सा है उसकी तरफ़।

पर दिल कुछ सोचकर बैठ-सा गया और उसने अपने कुँवारे दिल को समझाया, किटी डार्लिंग, तुम्हारा काम तो गाना है, सो तुम गाओ। नज़रों का ये खेल बहुत महँगा है और तुम्हें अभी अगले महीने के खर्च का इन्तज़ाम करना है। तुम्हें अपनी निगाहों और मुस्कराहट को हाल में बैठे सारे लोगों में देना है। कहीं इनमें से कोई नाराज़ न हो जाए और वो अपनी तवज्जुह गाने की तरफ़ लगाने की कोशिश करने लगी। पर निगाहों को, जब वो तकना सीख जाएँ, कौन रोक सकता है। उसे लग रहा था कि वो आँखें उसका पीछा कर रही हैं। अब वो नज़रें उठाती, नज़रें नज़रों से टकरातीं और वो नज़रें मोड़ लेती, और यूँही उसका सारा प्रोग्राम खत्म हो गया।

वो अपने कमरे में लौट आई। मेकअप उतारकर वो सीधी-सादी किटी बन गई जो चौथी लेन की तीसरी मंज़िल के फ़्लैट में अपनी सहेली नैनी के साथ रहती थी। और तब ही दरवाज़े पर खटखटाहट हुई। उसने दरवाज़ा खोला तो वो खड़ा था। वही सख्त-से चेहरे वाला। एक मासूम-सी मुस्कराहट उसके होंठों पर बिखरी थी। आँखों ने जैसे दिमाग़ से पूछा—ये क्या है ? उसने फ़ौरन सीने को साड़ी के पल्लू से छुपा लिया।

"मैं आप को मुबारकबाद देने आया था। आप का गीत बहुत उमदा था।"

"जी !"

"बड़ा प्रभावशाली गीत था, इससे आपकी अच्छी तबीअत का पता लगता है।"

"जी !" वो पत्थर की मूर्ति बनी खड़ी थी।

वो खिसिया गया। उसका मुँह उतर गया, "क्या आप मुझे अन्दर आने को भी नहीं कहेंगी?"

"ओह !........आइये, अन्दर आ जाइये।"

वो अन्दर आकर कुरसी पर बैठ गया।

तभी वो जागी। तो ये कोई ख्वाब नहीं। वो खामोश मेरे सामने बैठा है।....मगर वो है कौन? उसे अन्दर क्यों बुला लिया। इससे पहले तो मुबारकबाद देने वाले बाहर ही से वापस कर दिये जाते थे। अब आ गया है तो क्या बुराई है। मगर वो इतना चुप क्यों है। क्या वो हमेशा ऐसे ही रहता है।

"देखिये, मुझे ये एहसास है कि मैं आप का वक़्त बरबाद कर रहा हूँ। पर न मालूम क्यों मैंने महसूस किया कि आप से बातें करना मेरे लिए बहुत ज़रूरी है। क्या आप मेरे साथ बैठियेगा?"

"जी....नहीं....मैं तो घर जाऊँगी।" वो खड़ी हो गई।

"अच्छा तो अगर कल किसी वक़्त आप खाली हों....! मैं जानता हूँ आप बहुत मसरूफ़ हैं।"

किटी ने उसकी तरफ़ देखा कि कहीं वो व्यंग तो नहीं कर रहा है, मगर वहाँ सच्चाई के सिवा और था ही क्या।

"मेरे पास तो वक़्त ही नहीं....।" उसने अक्खड़ लहजे में कहा।

"अच्छा तो मैं डांस के वक्त ही आ जाऊँगा।"

और जब किटी कमरा बन्द करके चलने लगी तो फिर बोला, "अगर आप बुरा न मानें तो मैं आप के साथ आपके घर तक चला चलूँ।"

"मेरे खुदा! ये कैसा है। इतनी-सी उम्र में इतना दर्द कहाँ से आ गया इसके पास! ये रंज, ये मलाल! ये चेहरे पर बिखरी उदासियाँ, आँखों में ये विनतियाँ।" और किटी को जैसे रहम आ गया और उसने धीरे से एक लंबी 'हूँ' कर दी।

और दूसरे दिन भी किटी ने गीत के दौरान में देखा कि वो रंज, उदासी और मलाल में डूबी आँखें, उसे तक रही हैं और उनकी खामोश विनतियाँ जैसे उसके गीत के बोल से टकराने लगीं और तब उसने अपने दिल को थामकर खामोश दुआ माँगी। "मेरे खुदा ये बहुत है, मैं अपने आप को रोक न सकूँगी। मुझे उतना ही बोझ दे, जितना मैं बरदाश्त कर सकूँ।"

मगर जब किटी ड्रेसिंग रूम में कपड़े बदलकर मेकअप उतार रही थी तो वो फिर आ गया। किटी फिर उसके साथ अपने घर तक गई। और फिर दूसरे

दिन भी यही हुआ, तीसरे दिन भी, चौथे दिन भी और फिर यही नियम बन गया।

वो धीमे लहजे में आम बातें करता रहता, और किटी सोचती—इतना ख़ामोश रहता है। उसके चेहरे पर ग़म बिखरा रहता है। हाए! अगर वो इतना ख़ामोश, इतना मासूम, इतना सीधा न होता तो मैं अपने अक्खड़पन से उसे भगा चुकी होती। वो कितना अजीब है, कितना मुख़तलिफ़! मगर वो अपने बारे में कुछ कहता क्यों नहीं! मेरे बारे में कुछ पूछता क्यों नहीं! बस उसी उदास लहजे में आम बातें किया करता है।

लेकिन वो वैसे ही उसे घर छोड़ने जाता रहा और वैसे ही धीमे लहजे में आम बातें करता रहा। न उसने किटी से उसकी ख़ूबसूरती के बारे में कुछ कहा, न ही कभी किसी तरह से मुहब्बत के जज़बात का इज़हार किया। बस उसकी ख़ामोश निगाहें किटी को तकती रहतीं, और निगाहों की इस हलकी-हलकी आँच ने किटी के दिल को पिघला डाला। उसकी मज़लूमियत ने, ख़ामोशी से हर बात सहने ने, किटी के दिल से सख़्ती को हटा डाला और किटी का दिल पसीज गया।

वो इतना उदास रहता है। शायद वो बहुत सताया हुआ है। क्या उसको भी कभी किसी ने प्यार नहीं किया। हाए! बेचारा!

तवज्जुह, हमदर्दी और फिर मुहब्बत।

क्या मैं उससे मुहब्बत करने लगी हूँ। ग़मज़दा चेहरे वाले इस ख़ामोशी-पसन्द इंसान को चाहने लगी हूँ, जिसके लिए मेरी एक मुस्कराहट ही जिन्दगी की पूँजी है!

"पाक बाप! उसकी आहों की आग मुझे जलाए डालती है। मेरे दामन ने ये आग कैसे पकड़ ली, क्यों पकड़ ली, अब क्या होगा।"

पर किटी और वो करीब आते गए। मुलाक़ात के घंटे जल्द गुज़रने लगे। इन्तज़ार की रातें लंबी लगने लगीं और चीज़ें उसके लिए बेमानी होने लगीं। उसका दिल अब भावनाओं के समुन्दर में डोलता रहता। सब औरतों की तरह उसके दिल में भी बेतवज्जुही, बेरुख़ी, लगावट, भरोसा, ग़ुरूर, ये सारी भावनाएँ घड़ी भर क्षण भर के लिए उभरतीं और फिर मुहब्बत के समुन्दर में डूबकर गुम हो जातीं।

अब किटी मेकअप उतारने जाती तो उसके कान जानी-पहचानी खटखटाहट का इन्तजार करते रहते। होंठों की लिपस्टिक बोसे (चुम्बन) से फैल जाने के लिए तड़पती। सर के बाल सीने से लगकर बिखर जाने की तमन्ना करते, ख़ूबसूरत पोशाक बाजुओं में दबकर मसले जाने के लिए बेताब रहती। और फिर वो आ जाता और सारे अरमान पूरे हो जाते। फिर उसके उदास चेहरे पर मुस्कराहटें उभरने

लगतीं और सारा कमरा जैसे खुशियों से भर जाता। फिर उसकी बाहें किटी को क़रीब कर लेतीं और वो मुहब्बत की बातें करने लगता और तब किटी का दिल ग़ुरूर से भर जाता।

वो, जो इतने अच्छे घराने का ऐसा होनहार सपूत था, सिर्फ़ उसे चाहता था, दुनिया की सब चीज़ों से ज़्यादा चाहता था। जब किटी की सहेलियाँ उससे कहतीं, "किटी, तुम कितनी खुश-क़िस्मत हो।" तो किटी गर्व से अपना सर ऊँचा कर लेती। और थी भी गर्व की बात, वो उससे शादी करना चाहता था। और किटी जब ये सोचती तो उसकी पलकें आँसुओं से भीग जातीं।

"पाक मैरी! मेरी शादी हो जाएगी। मैं उसके साथ अपने घर में रहूँगी। नारंगी ईंटों वाला, छोटा-सा घर जिसके चारों तरफ़ बेलों के झुंड होंगे। और फिर मैं उसे अपनी मुहब्बत से शराबोर कर दूँगी। उसे इतनी मुहब्बत दूँगी कि उसके चेहरे से उदासियों के साए हमेशा के लिए ग़ायब हो जाएँगे। और खुशी की धूप से उसका चेहरा चमक उठेगा।"

वो सोचती, जल्द ही किसी दिन वो अपनी ज़बान से साफ़-साफ़ मुझसे शादी के लिए पूछेगा। मैं कोई जवाब नहीं दूँगी। फिर वो मुझे बताएगा कि दुनिया में सब कुछ हो सकता है, हमारी शादी में कोई भी रुकावट नहीं है। खामोश रहूँगी। फिर वो मेरा हाथ थामकर मुझे मुहब्बत की कसम देगा और तब मैं अपना सर उसके सर पर रख दूँगी और चुपके से 'हाँ' कह ही दूँगी। और फिर मैं उसे वो बात बता ही दूँगी। हाँ,....उसे वो बात ज़रूर बता देनी चाहिए। मुझे कोई डर क्यों हो? वो मुझे अच्छी तरह समझता है। मुझे उस पर पूरा भरोसा है। किटी कल्पना के रंग-बिरंगे क्षितिज पर चमकीले बादल की तरह फिसलती रहती।

और फिर वो दिन भी आ गया, जिसका उसे इतना इन्तज़ार था। उस दिन उसने किटी से शादी की दरख्वास्त की। वो कह रहा था कि वो किटी को चाहता है और वो ये भी समझता है कि किटी भी सिर्फ उसी से मुहब्बत करती है। उसने उसे इतनी मुहब्बत दी है कि अब उसके पास किसी और मर्द के लिए मुहब्बत नहीं रह गई है। और ये कि वो किटी के बग़ैर ज़िन्दगी नहीं गुज़ार सकता और तब किटी ने अपनी नज़रें ऊपर उठाईं, उसे देखा और अपना सर उसके कन्धे पर रखकर 'हाँ' कर दी।

वो खुश हो गया। उसने शोर मचाते हुए आरकेस्ट्रा का रेकार्ड लगा दिया, और वो बहुत तेज़ डांस करने लगे। वो नाच रहा था। किटी नाच रही थी। उसका दिल नाच रहा था और वो सोच रही थी कि काश! ज़िन्दगी खुशी का

नृत्य बन जाती ! और वो उसे उनकी बाहों का सहारा लेकर उसके गाल से गाल मिलाकर बता देती। वो समझ रही थी ज़िन्दगी सिर्फ़ उसके साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का नाम है। और तब किटी ने सोचा कि उसे वो बात भी बता दे।

और नाच के दौरान में किटी ने अपनी बाहें उसकी गर्दन में डाल दीं और मद्धिम आवाज़ में बोली, "देखो, मेरा दिल खुली किताब की तरह तुम्हारे सामने है और तुम अच्छी तरह जानते हो कि वहाँ तुम ही तुम हो, इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम ये बात ज़रूर जान लो।"

"कौन-सी बात ?"

"डारलिंग ! मैं तुम्हें ये बताना चाहती हूँ कि मेरी माँ ने मेरे बाप से शादी नहीं की। बल्कि मुझे तो ये भी नहीं मालूम कि मेरा बाप है कौन ? बहुत दिन हुए जब मुझे ये मालूम हुआ तो मैंने अपनी माँ को छोड़ दिया और यहाँ आकर होटल में गाने की नौकरी क़ुबूल कर ली। क्यों कर ली ? शायद इसलिए कि इस नौकरी में सबने मुझे देखा था, मेरे बाप का नाम नहीं पूछा था।"

वो नाचते-नाचते रुक गया, उसके हाथ किटी के हाथों से अलग हो गए और वो खामोश खड़ा था।

"तुम खामोश हो गए ! कुछ बोलो ! मेरा दम घुटा जा रहा है। क्या अब तुम्हें मुझसे मुहब्बत नहीं रही। मैं बुरी हूँ ? तो अब मुझे ज़हर ही क्यों नहीं दे देते ताकि मिरे से गन्दे वजूद से ज़मीन की सतह पाक हो जाए। मुझे ज़िन्दा रहने देने का एहसान क्यों किया है। उफ़ ! मैं क्या करूँ?"

वो उसके सीने से लगकर सिसकियाँ ले-लेकर रोने लगी।

उसने दिलासा दिया।

"तो तुम अब भी मुझसे मुहब्बत करते हो ? करते हो....न ? मैं जानती थी तुम मुझको समझते हो। देखो, मुझे किसी चीज़ की ख्वाहिश नहीं ! मुझे सिर्फ़ अपनी मुहब्बत दे दो। मेरा सर अपने सीने से लगा रहने दो। अपने हाथ को मेरे सर पर रख दो। तुम ने मुझसे कहा था कि तुम्हें दुनिया की बातों की पर्वा नहीं। अगर तुम मेरे साथ होगे तो मैं भी दुनिया के तानों और बातों को भूल जाऊँगी !.... बोलो !"

"हाँ, ठीक है।........मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ।" उसने रुक-रुक कर कहा।

"तो तुम मुझसे शादी करोगे !"

"हाँ, मैंने तुमसे वादा कर लिया है। प्रोग्राम के अनुसार सनीचर की शाम को चार बजे हम शादी के दफ़्तर चलेंगे।" वो गम्भीर लहजे में बोला।

"मुझे यक़ीन था। मैं जानती थी। मैं तुम्हारे प्यार के फूलों से अपने दिल के चमन को सजाऊँगी। और मैं तुमसे इतनी मुहब्बत करूँगी कि आज तक किसी औरत ने किसी मर्द से न की होगी।"

वो खामोश सुनता रहा और फिर नैनी आ गई। और थोड़ी देर बाद वो चला गया।

"नैनी, हम दोनों शादी कर रहे हैं इसी सनीचर को। उसने मुझसे शादी करने का प्रस्ताव किया और मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया और मैंने उसे वो बात भी बता दी। नैनी डारलिंग, वो मुझे बेहद चाहता है। मुझे मुबारकबाद दो, नैनी डारलिंग ! सनीचर को तुम हमारे साथ ही चलना।"

"हाँ, किटी डियर ! मैं बहुत खुश हूँ कि मेरी गुड़िया-सी किटी डारलिंग की शादी उसके प्रिंस चारमिंग के साथ हो रही है। हाए किटी ! तुम शादी के सफ़ेद लिबास में कितनी प्यारी लगोगी !"

और वाक़ई शादी के लिबास में किटी बहुत प्यारी लग रही थी। उसका खूबसूरत सफ़ेद लिबास उसके नाचने वाले सुडौल शरीर से लगकर और भी खूबसूरत लग रहा था। मगर उससे भी ज्यादा खूबसूरत थी मुस्कराती हुई आँखों में वो चमक जो केवल प्रियतम की कल्पना ही से आँखों में पैदा होती है। दिल की उमँगें बार-बार उसके गालों पर सुर्खी पैदा कर देती थीं और शरीर का एक-एक अंग प्रियतम का हो जाने की खुशी में मस्त था। वो एक ऐसी सफ़ेद कली लग रही थी जो खिल जाने के लिए बेताब हो और उसी बेताबी से उसके कान पौने चार बजे से ही क़दमों की उस खास चाप सुनने के लिए बेक़रार थे। मगर चार बज गए और वो न आया। किटी ने अपने आप को समझाया।

"आजकल रास्तों में कितनी भीड़-भाड़ रहती है। वो आता ही होगा।" पर पाँच बजे और छः बजे। मगर वो न आया।

तब नैनी ने पीछे से आकर उसे कन्धों से पकड़ लिया और बोली, "किटी डारलिंग, दिल मज़बूत रखो।"

"तुम क्या कहना चाहती हो नैनी ? फ़ौरन कह डालो मेरा दिल घबरा रहा है।"

"मैंने उसके घर फ़ोन किया था, वहाँ से मालूम हुआ कि वो कल रात से ही गया हुआ है।"

किटी को लगा जैसे किसी ने उसके कलेजे में एक बड़ी-सी छुरी उतार दी हो और उसके दिल को मुट्ठी में दबाकर भींच डाला हो, या उसके शरीर से

कोई तेज़ रफ़तार गाड़ी गुज़र गई हो और वो बिलकुल कुचलकर रह गई हो। उसे लगा कि उसके पैरों का फ़र्श तेज़ी से घूम रहा है और वो मेज़ का सहारा लेकर बैठ गई। नैनी उसे दिलासे दे रही थी। मगर किटी को तो लग रहा था कि उसके दिल में कुछ चुभ गया है और निकालने की कोशिश में उसका कुछ हिस्सा टूटकर हमेशा-हमेशा के लिए अन्दर रह गया है और आँसू ....वो तो न मालूम कहाँ चले गए थे। शायद वो उस आग से खुश्क हो गए थे, जिसने उसके दिल को जला रखा।

तो इसने भी मुझे छोड़ दिया। ज़िन्दगी में एक दफ़ा फिर मुझे मायूसी हुई। सीने में जो इतने दिनों की यादें समाई हैं, मैं उन्हें कैसे भूलूँगी ! मैं उन्हें कैसे अपने सीने से खुरचकर मिटाऊँ। ज़िन्दगी में मेरे लिए कोई राह खुली ही नहीं क्योंकि मैं शरीफ़ों की तरह क़ानून की इजाज़त लेकर नहीं पैदा हुई। यहाँ कौन मुझसे मुहब्बत करेगा ? किसको मुझसे हमदर्दी होगी ? फिर मैं ज़िन्दा क्यों रहूँ ?

न मालूम वो हफ़्ता उसने कैसे गुज़ारा। यादें दिल में तूफ़ान बरपा कर जातीं और वो यादों के समुन्दर में गोते खाती रहती। न कोई सुनने वाला था, न दिलासा देने वाला। वो अकेला पड़ी तड़पती रहती थी।

वो सोचती, "दुनिया में मेरे लिए रह ही क्या गया है। मेरा दर्द, वो अपमान जिसके बोझ तले मैं हमेशा से दबी रही हूँ, हीनता की वो भावना जिसने मेरी ज़िन्दगी को बिलकुल बदलकर रख दिया है। यहाँ कौन देखेगा, कौन समझेगा। शायद मेरा ख़ुदा समझे तो समझे...."

और एक दिन वो सचमुच क़रीब के गिरजे के पादरी के पास पहुँच गई।

पादरी ने उसकी बातें सुनकर कहा, "मेरी बेटी, दुनिया बहुत बड़ी है। यहाँ कई दफ़ा तुम्हारा दिल टूटेगा, कई बार तुम मायूस होगी। कई बार तुम नाकाम होगी और जब वक़्त गुज़र जाएगा तो तुम देखोगी कि तुम्हारा दर्द कम हो गया है और नई-नई उमँगें तुम्हारे दिल में जन्म ले चुकी हैं। मेरी बेटी ! निराशाओं को रौंद डालना सीखो।"

"मेरी पैदाइश ही ज़िन्दगी की नाकामी का कारण है। मैं कुछ भी हासिल कर लूँ मगर वो किस तरह हासिल करूँ जिस पर मेरा या किसी का भी कोई बस नहीं। मैं मुहब्बत के लिए तड़पती रहती हूँ, मगर....मेरा कोई बाप नहीं, सिवाए आसमानी बाप के। अगर तुमने भी मुझे अपने आग़ोश से मुहब्बत न दी तो फिर मौत अपनी आग़ोश से मुझे न दुतकारेगी !"

"अच्छी बात है, मेरी बेटी! तुम नन बन सकती हो। कल अपना सामान लेकर यहाँ आ जाना।"

और जब किटी सामान लेने वापस गई तो उसने देखा कि वो वहाँ बैठा है। उसे देखकर वो मुस्कराया और किटी के मन-मंदिर में जैसे हलकी-हलकी घंटियाँ बजने लगीं। वो आगे बढ़ा, उसने किटी के ठंडे हाथों को पकड़ लिया। किटी का शरीर छुईमुई की तरह सिमट गया। सनसनी की एक लहर उठी और हाथों से गुज़रती हुई एहसासात पर छा गई। किटी को लगा वो दुल्हन का सफ़ेद जोड़ा पहने खड़ी है। एक मीठी-मीठी खुशबू लिए हवा सरसरा रही है और उसके बाल हवा में लहरा रहे हैं। चर्च का आरगन गुनगुना रहा है और संगीत भरी फ़िज़ा में सरगोशियाँ हो रही हैं। वो सामने गुलदस्ता लिये खड़ा है और उस पर फूल बरस रहे हैं।

"किटी मैंने सोच लिया है, मैं तुमसे शादी कर लूँगा।"

"धम....!" और किटी को लगा किसी ने उसे बादलों से धक्का दे दिया हो और वो फ़िज़ा में क़लाबाज़ियाँ लगाती गिर रही हो, नीचे गहराइयों में जहाँ अँधेरे के सिवा कुछ भी न हो। वो भावनाओं से वंचित बड़बड़ाई।

"शादी कर लोगे!"

"हाँ, तुम्हारा कोई न कोई सहारा तो होना ही चाहिए।"

और एकदम उसे महसूस हुआ, गोया वो किटी जो मुहब्बत में नाकाम थी, मर गई है और उसकी जगह एक नई किटी ने ले ली है, जो किसी के रहमो-करम की मुहताज नहीं, जिसे जिन्दगी गुज़ारने का सलीक़ा है और जिसे ज़िन्दगी में मुहब्बत है, थकन और टूटी हुई किस्मत की जगह उस में विश्वास और शक्ति है।" बगैर कुछ बोले, किटी धीरे-धीरे दूसरे कमरे में चली गई।

वो भी उसके पीछे-पीछे उठा और दरवाज़ा खोलने के लिए लपका, लेकिन दरवाज़ा बन्द हो चुका था, शायद हमेशा के लिए।

तो
ह
फ़ा

इनायतुल्ला

बेगम अकबर खाविन्द की मौत के बाद ऐसी बीमार हुईं कि चारपाई से लग गईं। उसकी महलनुमा कोठी के सामने से एक डाक्टर की कार हटती तो दूसरी आ खड़ी होती थी ? दुनिया भर के इन्जेकशन बेगम अकबर के कमरे में जमा हो गए थे। ऊँची सोसाइटी में तो जैसे भूचाल आ गया था। तीमारदारों का एक हुजूम जमा रहता था। बेगम अकबर अगर बेगम न होती और अगर कोठी की जगह झोंपड़ी में रहती तो यही इन्जेकशन और यही डाक्टर उसे सराब (मृग तृष्णा) की मानिन्द दिखाई देते और वह इस दुनिया से जाड़े की चाँदनी की तरह गुज़र जाती, लेकिन वह बेगम थी। दौलतमन्द बेवा थी। शहर में चार कोठियाँ किराये पर चढ़ी हुई थीं। चार बसें चल रही थीं। सैकड़ों एकड़ ज़मीन सोना उगलती थी। बीस एकड़ में फैले हुए सन्तरों और माल्टों के क़तार-दर-क़तार दरख्तों से रुपयों की थैलियाँ झड़ती थीं। वह अठाईस बरस की उम्र में बेवा हो गई थी। अकबर मरहूम के साथ उसे वही प्यार था जो हर एशियाई बीवी को अपने शौहर से होता है। अकबर को मौत ने बेगम को ज़िन्दगी में ही मार डाला। वह ज़िन्दगी न रही, ज़िन्दगी का वह रचाव न रहा। सुहाने ख़्वाबों के लरज़ते तारों पर वह झूला झूलती रही और आँसुओं के धुँधलके में कल्पनाओं के जादू से मंत्र मुग्ध होती रही। उसने अपने आप को फ़रेब दिया। तनहाइयों को धोके दिये। बेगम ने रात के उदास अँधेरों में बेशक़ीमत फ़र्नीचर से सजे कमरे में मरहूम अकबर के पाँव की आहट सुनी लेकिन लर लरज़ती हुई एक गूँज उसे बार-बार कहती रही, "नाहीद, अब यहाँ कोई नहीं, कोई नहीं

आएगा।"

उजड़े हुए सुहाग और लुटे हुए सुकून को उसने कहाँ-कहाँ तलाश न किया। हल्की, सब्ज़ लम्बोतरी कारें, महलनुमा कोठी के तेरह-चौदह आरस्ता-पैरास्ता कमरों में चाँदी की झनकार और सोने की चमक में उसे वह क़रार ही न मिल सका जो उसने अकबर की अथाह मुहब्बत और साथ में पाया था। ज़िन्दगी की वे निशान ख्वाबों की धुन्ध में उसे वह मंज़िलें दिखाई देती रहीं जिन तक अब कोई रास्ता न था। और शर्मीली तमन्नाएँ एक-एक कर के बुझते दियों की तरह दम तोड़ती गईं। दर्द भरी तनहाइयों में दो बरस गुज़र गए। बेगम अकबर ने मुहब्बत की थी। वह मुहब्बत करना जानती थी और यह मुहब्बत उसके रग व रेशे में समायी हुई थी। बेवा बेगम दो बरस तक एक रोग को आँसुओं से सोचती रही जो आहिस्ता-आहिस्ता उसकी हड्डियों में रचता गया और आखिर उसकी टाँगों की हड्डियों में जम कर बैठ गया।

बेवा जवान थी और हसीन भी लेकिन दौलत ने उसे हसीनतर बना दिया था। ज्यों-ज्यों उसका मरज़ बढ़ता जा रहा था, उसके ग़मख्वारों की गिनती भी बढ़ती जा रही थी। उसके गिर्द एक हुजूम मँडराता रहता था। उनमें कुँआरे भी थे, रँडुवे भी थे और दूसरे भी। वह यों तो बेगम के ग़मख्वार थे लेकिन दिल-ही दिल में वह इस ग़म में घुले जा रहे थे कि इतनी दौलत को कौन समेटेगा। बेचारी इस उम्र में बेवा हो गई है। कुछ ने दबी-दबी ज़बान में रफ़ाक़त के दावे किये, कुछ ने इशारों-इशारों में कुछ कह दिया। लेकिन बेगम अकबर इन हमदर्दियों और नज़रों को भाँप गई थी कि यह नज़रें, जिन में यह लोग मेरा दर्द भर कर लाए हैं मुझ पर नहीं, मेरी कोठी और दौलत को देख रही हैं। उसने अक्सर उन फिसलती हुई निगाहों को देखा, महसूस किया, कुछ कहना चाहा लेकिन खामोश रही। वह उन्हें कहना चाहती थी—मैंने अकबर को चाहा था, उसकी दौलत को नहीं। यह तो अकबर की दीवानगी थी कि उसने मेरी मुहब्बत की खातिर यह जायदाद और सब कुछ मेरे नाम कर दिया था। मरहूम मेरी मुहब्बत की क़ीमत न जान सका। काश! वह जिन्दा रहता और मैं उसके बदले दौलत के अंबार ज़मीन में दफ़न कर देती। लेकिन ऊँची सोसाइटी के आदाब ने उसे कुछ न कहने दिया।

हड्डियों का रोग बढ़ता गया। टाँगें नर्म व नाज़ुक जिस्म को उठाने से इन्कार करने लगीं और बेगम सारा-सारा दिन लॉन में आराम कुर्सी पर नीमदराज़ रहने लगी। डाक्टर पर डाक्टर चले आ रहे थे। तीमारदारों की

क़तार और लम्बी हो गई। मरीज़ की शगुफ़्तगी पर ग़मों का साया पड़ ही चुका था। अब जवानी को हड्डियों का दर्द चाटने लगा। डाक्टरों ने जिस क़दर जतन किये, मरज़ उसी क़दर बढ़ता गया।

गिद्धों का घेरा तंग होने लगा और राल टपकने लगी।

बेगम अकबर ने इस दुख और बेचैनी में मरहूम शौहर को रह-रह कर पुकारा, कल्पना में उसका पीछा किया, काली वीरान रातों में उसे बिस्तर में टटोला और बेगम की गर्म आहें सर्द गूँज बनकर दिन को उड़ते हुए चमगादड़ की तरह दीवारों से टकराती रहीं। मरहूम की यादगार यह दौलत, जायदाद और रोग था। न कोई बच्चा न बच्ची। या एक तसवीर थी जो सोने के कमरे में अंगीठी पर रखी रहती थी, जिसके गिर्द हर सुबह ताज़े फूलों का हार लपेटना बेगम की ज़िन्दगी का ज़रूरी काम बन गया था। बेगम इस भीड़ में तनहा थी और यह तनहाई बेहद तकलीफ़ दे रही थी।

तीमारदारों और ग़मख्वारों के हजूम में सिर्फ़ एक आदमी था जो बेगम अकबर की नज़रों में जँचता था। वह था अकरम। एक लाख के सरमाए से उसने मिल खोला था लेकिन अभी कारोबार घाटे में ही जा रहा था। चौंतीस, पैंतीस बरस की उम्र का होगा और अभी कुँआरा था देखने में अच्छा-खासा खूबसूरत जवान था। होठों में क़हक़हे और आँखों में दिलकश मुस्कुराहटें रची हुई थीं। बेगम अकबर के साथ उसका बरताव दूसरों से भिन्न था। उसके व्यवहार में ग़रज़ और डिप्लोमेसी नहीं होती थी। वह जब भी आता, थोड़े शब्दों में हाल पूछता और कुछ इस अन्दाज़ से बातें करता कि बेगम अकबर उसे अपनी बीमार ज़िन्दगी का ज़रूरी अंश समझने लग गई। कभी-कभी तो उसने यह भी महसूस किया कि अकरम नहीं होता है तो उसकी हड्डियों का दर्द बढ़ जाता है।

बेगम अकबर ने अर्से से, बसों और जायदाद की आमदनी और खर्च का हिसाब-किताब भी नहीं देखा था। जाने कितना रुपया आता था और जाता था। उसे इस क़दर खयाल था कि जितने बिल उसके सामने लाए जाते हैं वह बग़ैर पूछे चेक काट देती है। अकरम पहला इन्सान था जिसने एक दिन यह हिसाब-किताब चेक किया, दुरुस्त किया, बैलेन्स शीट बनाई और इस मक़सद के लिए तीन सौ रुपये माहवार पर एक क्लर्क रख दिया। यहाँ तक कि उसने बावर्ची खाने का भी हिसाब चेक करके खान्सामा को डाँट पिला दी। अकरम हर हफ़्ते क्लर्क और खान्सामाँ की जान खाने लग गया।

बेगम अकबर अकरम की यह दिलचस्पी देखती रही। और उसकी कल्पना

में अकबर मरहूम की तसवीर निखर आई। उसने आह की और होंठों ही होंठों कहा, "अकबर और अकरम में सिर्फ़ यह फ़र्क है कि वह अकबर था यह अकरम है।" अकरम उस कोठी में जज़्ब-सा होता जा रहा था। ज्यों-ज्यों अकरम बेगम अकबर के मरीज़ माहौल में समाता जा रहा था, बेग़म के दिल में तीमारदारों और ग़मख्वारों के खिलाफ़ नापसंदीदगी नफ़रत की सूरत अख्तियार करती जा रही थी। एक दिन उसने अकरम से कह ही दिया, "मिस्टर अकरम! इन लोगों से कहिए, यहाँ न आया करें। नाहक परीशान करते हैं।" अकरम ने उसकी तरफ़ देखा। चेहरे पर वही ज़ेरे-लब तबस्सुम और मुस्कराती हुई आँखें जैसे पूछ रही थीं—क्या मेरा नाम भी उसी लिस्ट में है? बेगम अकबर की आँखों में दो आँसू उमड़ आए, जिनके पीछे बेबस मुहब्बत तड़प रही थी। वह कुछ देर तक अकरम की तरफ़ देखती रही और फिर धीरे से बोली, "अकरम!" उसने अपना हाथ आगे कर दिया। अकरम आहिस्ता-आहिस्ता उठा और हवा में उठे हुए उस गोरे हाथ को थाम कर बोला, "नाहीद!" उसने उस अन्दाज़ से कहा जैसे नाहीद के लफ़्ज़ का मज़ा चख रहा हो। वह बेगम के सामने घुटने के बल बैठ गया। यह पहला मौक़ा था जब उसने उसे नाहीद कहा था।

"तुम अकेले आया करो। तुम अकेले मेरे पास बैठा करो।"

बेगम अकबर के मुँह से ये अलफ़ाज़ ऐसी बेसाख्तगी से निकल रहे थे जैसे वह अलफ़ाज़ की उस सैलाब बाढ़ को जाने कब से रोके हुए थी और आखिर यह बाढ़ बाँध तोड़ कर बह निकली।

"तुम होते हो तो मुझे अकबर भूल जाता है। मैं इस दर्द को भूल जाती हूँ। मैं भली चंगी हो जाती हूँ। अक़रम! मेरे करीब आ जाओ। और क़रीब........" जाने वह क्या कुछ कहती कि किसी की कार के ब्रेकों की चीख़ ने यह तिलस्म तोड़ डाला। उबलते हुए जज़्बात के सरचश्मे को जैसे किसी ने पत्थर से बंद कर दिया और दूसरे लम्हे कमरे में, "हेलो मिसेज़ अकबर" की घिसीपीटी आवाज़ गूँजी जैसे किसी ने झील की शांति को भारी भरकम पत्थर से नष्ट कर डाला हो।

चन्द ही रोज़ बाद ऊँची सोसाइटी ने भूचाल का जोरदार झटका महसूस किया। बाज़ ने अपने आप को धोका दिया कि यह खबर सच्ची हो ही नहीं सकती है।

"आखिर यह हुआ क्यों कर?"

"डिनर तक न दिया।"

"हल्की-सी गार्डन पार्टी हो जाती।"

"इनसे तो झोपड़ियों वाले अच्छे हैं। ढोल बाजा बजा लेते हैं।"

"यह अफ़वाह है।"

"यह झूठ है।"

"यह दुरुस्त है।"

"सुना आप ने भी?"

"क्या?"

"बेगम अकबर ने अकरम के साथ शादी कर ली है!"

मुँह खुले के खुले रह गए। उँगलियाँ दाँतों तले दबी रह गईं! बातें होने लगीं। बहुतों ने हार के तल्ख़ एहसास को दबाने के लिए ऊँची आवाज़ में अकरम के खिलाफ़ प्रोपैगन्डा शुरू कर दिया और बेगम को भी रुसवा किया। लेकिन शादी हो चुकी थी। बेगम के उदास चेहरे पर ज़िन्दगी के आसार निखरने लगे थे और अब वह आरामकुर्सी छोड़कर बहुत देर तक लॉन में टहलने भी लगी थीं। इसलिए नहीं कि मर्ज़ में कमी आ गई थी बल्कि इसलिए कि उसे एक सहारा मिल गया था जो बेगम की नज़र में अकबर का दूसरा रूप था। भटके हुए राही को मंज़िल के निशान मिलने लगे थे।

उस शादी से यह तबदीलियाँ हुईं कि बेगम की कोठी की फ़िज़ा में अब कारों की ब्रेकें न गूँजा करती थीं। तीमारदारों का मजमा बिखर गया। पाँच छः डाक्टरों की जगह अब सिर्फ एक डाक्टर आने लगा, जिसे अकरम ने पसन्द किया था, बाक़ी डाक्टरों को छुट्टी मिल गई। अकरम की मिल के लिए जापान से मशीन और जापानी मिस्त्री आ गए। सोने के कमरे में अकबर मरहूम की तसवीर के गिर्द फूल मुर्झा कर झड़ गए और कोठी की फ़िज़ा में छाई हुई उदासियाँ ढल गईं। अकरम ने फ़ुरसत का तमाम वक़्त बेगम के लिए वक्फ़ कर दिया। वह आदर्श शौहर साबित हुआ। शादी हुए एक साल हो ग़या लेकिन बेगम की टाँगों से दर्द न गया। दिल से अकबर की याद चली गई और उस दिल की हर धड़कन में अकरम समा गया।

अब अकरम ने घर में यह इन्तज़ाम किया कि बेगम की तीमारदारी के लिए अपनी एक ममेरी बहन को ले आया। सत्तरह अठारह बरस की इस कुँआरी लड़की की आँखों में शोखी, हरकतों में चुलबुलापन और होंठों पर शरारत भरी मुस्कराहट छाई रहती थी। इस हसीन और शोख लड़की
अपनी माँ की तरह संभाल लिया और हर वक़्त उसकी देखभाल और दिल बह-

लाने में मसरूफ़ रहती। बेगम ने अकरम और उस लड़की को बहुत बार अकेले में कानाफूसी करते देखा लेकिन उसे अकरम पर इस क़दर भरोसा था कि उसने दिल में किसी तरह के शक को जगह न दी। लड़की का बरताव भी तो प्यार व मुहब्बत और दयानतदारी से लबरेज़ था। बेगम की बीमार ज़िन्दगी की एक बड़ी कमी अकरम और उस लड़की ने पुरी कर दी थी।

बेगम बदस्तूर बीमार चली आ रही थी। उसके बाजू इन्जेक्शनों ने छलनी कर दिए थे। अब तो वह इस इलाज से उक्ता गई थी। एक रात अकरम और उसकी ममेरी बहन बंद कमरे में बैठे रहे। उस रात उन्होंने राज़ व नयाज़ की गहरी बातें कीं और एक स्कीम तैयार कर ली। आस्मान में एक सितारा दूसरे की तरफ़ लपका, दौड़ा और आखरी बार चमक कर टूट गया। रात की तारीकी और गहरी हो गई जिसके पुरअसरार सकूत में बेगम गहरी नींद सो रही थी।

दूसरी सुबह अकरम के खिले रहने वाले चेहरे पर भयानक उदासी छाई हुई थी। बातों में भी किसी हद तक लड़खड़ाहट और अल्फ़ाज में हल्की-सी कँप-कँपी थी। आँखों में बेचैनी और होंठों की कँपकँपी जैसे एक जुर्म को छुपाने की कोशिश कर रही थी। अकरम के मिज़ाज की यह कैफ़ियत बेगम महसूस किए बग़ैर न रह सकी और उसने उदास और मायूस नज़रों से अकरम की ओर देख कर कहा, "शादी करनी ही थी तो किसी अच्छी भली लड़की से करते। आपने तो अपनी भरपूर ज़िन्दगी को रोग लगा लिया है। मैं तो कभी तंदुरुस्त न हो सकूँगी।"

"नाहीद, क्यों ऐसी बातें ले बैठती हो..........." अकरम ने लपक कर उसका हाथ थाम लिया और कहा, "तुम जिन्दा रहो और तुम्हारी मुहब्बत ज़िन्दा रहे।"

"आपने मेरी खातिर अपनी उमँगों का गला घोंट दिया है...." बेगम ने दुखी हुई आवाज़ में कहा, "काश ! मैं इसकी क़ीमत दे सकती।" उसने आह भरी और गहरी फ़िक्र में डूब गई। जाने क्या वह शून्य में देख रही थी जो उसे नज़र आया और उसके बीमार होंठ पर हलका-सा तबस्सुम रेंग गया।

"मुझे कल पता चला है," अकरम ने कहा, "मरी में पोलैण्ड का एक डाक्टर आया है जो हड्डियों के रोग का माहिर है। अगर तुम पसन्द करो तो कल ही मरी चले चलें। वैसे भी इस मौसम में वहाँ जाना चाहिए था लेकिन उस डाक्टर का वहाँ होना सुनकर मैंने फैसला कर लिया है कि वहाँ जरूर चलेंगे, और कल ही। कार पर चला जाय तो ज़्यादा बेहतर है। नौकरों को यहीं छोड़ देंगे। वहाँ अपनी कोठी तो है ही ?"

"जैसी आपकी मर्जी।" बेगम ने ताईद में कहा।

और तीसरे दिन वो बादलों की ओट से झाँकती हुई एक पहाड़ी के दामन में स्लेटी रंग की कोटी में पहुँच चुके थे। सावन के बादलों ने मरी के जोबन को धोकर निखार दिया था। वहाँ पहुँचते ही अकरम ने बेगम से कहा, "एक दो रोज आराम करके डाक्टर को बुलाएँगे और नौकरों का बन्दोबस्त भी एक दो दिन के बाद करेंगे। फ़िलहाल होटल से खाना आ जाया करेगा।"

"किसी वक्त बुला लेंगे डाक्टर को....क्या जरूरत है। मैं तो अब...." बेगम कहते-कहते रुक गई। उसके होंठों पर अनोखी-सी मुस्कराहट फैल गई। अकरम ने यह मुस्कुराहट पहली बार देखी थी। वह कुछ समझ न पाया लेकिन उस मुस्कराहट के अनोखेपन को महसूस जरूर किया और उसका मुजरिम जमीर उसकी हस्ती में दुबक गया। उसके बाद उसने देखा कि बेगम उसकी तरफ़ टकटकी बाँधे देखती रहती है। उन नजरों में बेचारगी की झलक साफ़ थी और एक पैग़ाम भी था, जिसे पलकों ने छुपा रखा था। अकरम ने वह दिन बेचैनी में गुजारा। वह हाथों की थरथराहट छुपाने की खातिर हाथ जेब में ही डाले रहा। बेगम ज़्यादा देर तक उसे देखती रहती लेकिन उस पर पुरअसरार खामोशी तारी हो गई। अकरम यूँही ग़ैरइरादी तौर पर बाहर निकल जाता। बरामदे में टहलता रहता और चन्द क़दम टहल कर फिर कमरे में आ जाता। शाम को वह उसी कैफ़ियत में उठ ही रहा था कि बेगम ने उसे रोक लिया।

"बैठो न, कहाँ चल दिए।"

"कहीं नहीं! यूँ ही।"

"नहीं मेरे क़रीब रहो....।" बेगम ने ललचाई हुई नज़रों से उसे देखा। "अब मेरे क़रीब ही रहो। अब मैं सेहतयाब होती जा रही हूँ। देखो तो ज़रा मेरे हाथों का...." वह सहम सी गई और सहमे हुए बच्चे की तरह बोली, "मुझ पर हौल तारी होता जा रहा है। कहीं चले न जाना।"

अकरम ने महसूस किया जैसे उसके चरित्र और व्यक्तित्व की एक कड़ी तड़ाख से टूट कर गिर पड़ी है और उसकी मर्दानगी चूर-चूर हो गई है। उसने आगे हो कर बेगम के हाथों को थाम लिया और अपनी उँगलियाँ उसकी उँगलियों में इस तरह उलझाने लगा जैसे अपने चरित्र की कड़ियाँ जोड़ रहा हो।

"आप के हाथ काँप रहे हैं।" बेगम ने उसके हाथों को दबाते हुए कहा।

"ठंड है...." अकरम बेखयाली में बातें कर रहा था। "यूँ ही कुछ.... शायद ठंड-सी है।"

वह दिन गुज़र गया। वह रात गुज़र गई। एक और दिन आया और गुज़र गया। ये दो दिन और एक रात अकरम के लिए बहुत तवील थे। वक़्त जैसे जम कर खड़ा हो गया था। बेचैनी की घड़ियाँ यूँ लम्बी हुआ करती हैं। शाम आई, अँधेरा गहरा होने लगा तो अकरम ने बेगम से कहा, "चलो जरा सैर कर आएँ।"

वह कार में शहर से बाहर निकल गए और कार एक सुनसान जगह रुक गई। अकरम ने कार की बत्तियाँ बुझा दीं और अकरम, बेगम और कार सावन की रात की सियाही का एक हिस्सा बन गईं। दूसरे लमहे लरज़ते हुए दो हाथ बेगम की गर्दन की तरफ़ बढ़े। रात के अँधेरे में घुटी हुई चीख़ ने हल्की-सी कंपन पैदा की फिर मरीज़ जिस्म की बीमार-सी तड़प। नाज़ुक उँगलियों ने मरदाना कलाइयों को पकड़ लिया लेकिन मौत ने उन उँगलियों की गिरफ़्त को ढीला कर दिया और दोनों बाज़ू, जिनका रस मौत ने चूस लिया था, रानों पर यूँ गिर पड़े जिस तरह दो कच्ची टहनियाँ टूट कर गिरती हैं। सावन की घटाएँ चमकीं। बिजलियाँ गरजीं। आसमान पर इक्के दुक्के सितारे को बादलों ने आग़ोश में छुपा लिया। चीड़ के दरख़्तों ने हवा के साथ मिलकर सिसकियाँ भरीं और क़ुदरत के हँगामे में, रात की तारीकी में, औरत की मुहब्बत हमेशा की नींद सो गई।

अकरम कार में से निकला। दूसरी तरफ़ का दरवाज़ा खोला, लाश को उठाया और थोड़ा दूर जा कर एक गहरे बहुत गहरे खड्डे में फेंक दिया। वह लड़खड़ाती हुई टाँगों को घसीटता कार में बैठा। उसका रोआँरोआँ काँप रहा था। उसने कार की बत्तियाँ जलाईं तो उसे लगा जैसे बेगम कार के सामने खड़ी है—ख़ामोश, बेहिस, आँखें बंद, होंठ सिले हुए। यह फ़रेबे-निगाह ही सही, लेकिन अकरम ने बत्तियाँ बुझा दीं। वह अपने आप को सँभालने की कोशिश कर ही रहा था कि उसने महसूस किया जैसे नर्म व नाज़ुक दो हाथों ने उसकी गर्दन दबोच ली है। उसने सर को जोर से झटका दिया और टाई की गाँठ ढीली करके बटन खोल दिया। लेकिन कोई चीज़ उसके गले में आकर अटक गई थी जिसे वह कोशिश के बावजूद निगल न सका।

अकरम ने कार स्टार्ट की। बत्तियाँ जलाईं और तेज़ी से स्टेयरिंग घुमा कर कार को उस भयानक नज़ारे से निकाल लाया। बारिश शुरू हो चुकी थी। कार चढ़ाई चढ़ रही थी और सामने मोड़ था। बाईं तरफ़ पहाड़ी और दाईं तरफ़ गहरी वादी थी। उसने देखा बेगम दायें तरफ़ सड़क के किनारे खड़ी है, आँखें और मुँह बन्द। बिजली ज़ोर से चमकी। इतनी तेज़ की अकरम की आँखें चौंधिया

गई। उसने आँखें बंद कर लीं। खोलीं तो उसका वाहमा ग़ायब था। दिल इस तरह धड़क रहा था जैसे पसलियाँ तोड़ कर बाहर आ जाएगा। कार की पिछली सीट से आगे हो कर जैसे किसी ने अकरम के कान में कहा—खून कर लेना आसान है लेकिन उसे हज़म करना बहुत मुशकिल है। अकरम पीछे घूम कर देखने ही वाला था कि उसने अपनी आवाज़ पहचान ली और ऐक्सीलेटर पर पाँव और दबा दिया। उसने अपने आप को हौसला देने की कोशिश की और कल्पना में अपने आप को चार बसें, किराया चढ़ी हुई चार कोठियाँ, संतरों और माल्टों के बाग़ात, और एक लाख बैंक बैलेंस दिखाया और इस दौलत में खेलती हुई उस ने वह मामूज़ाद बहन भी देखी जो स्कीम के मुताबिक़ तीसरे रोज़ उसके पहलू में पहुँचने वाली थी। अकरम को सुबह उसे तार देना था कि बेगम दिल की हरकत बंद होने की वजह से मर गई हैं। अकरम ने खून में गर्मी महसूस की और उसके होंठों पर मुस्कराहट भी आई लेकिन यह मुस्कराहट सहम कर वहीं कहीं दुबक गई।

कार एक मोड़ और मुड़ रही थी कि अकरम को सामने फिर बेगम खड़ी दिखाई दी। वह बग़ैर पाँव हिलाए कार की तरफ़ बढ़ती आ रही थी। अकरम ने ऐक्सीलेटर से पाँव हटा कर ब्रेक लगा दी। देखा कि कार सड़क से हटकर एक झाड़ी के सामने खड़ी थी। बारिश तेज़ हो गई थी।

अकरम पसीने में शराबोर कोठी के अन्दर दाखिल हुआ। अँधेरे बरामदे में पहुँचा तो उसे यूँ लगा जैसे अँधेरे ग़ार में दाखिल हो रहा हो। वह काँप उठा और भाग कर बरामदे की बत्ती जलाई। वह दरवाज़े का ताला खोल रहा था कि उसे सिसकियों की आवाज़ सुनाई दी। वह ठिठक गया। इधर-उधर देखा, बरामदे के दूसरे कोने में बेगम खड़ी थी। अकरम ने सर को झटका दिया, पेशानी से पसीना पोंछा और रूमाल से आँखों को ज़ोर-ज़ोर से मला और किवाड़ों को ढकेल कर कमरे में पहुँच गया। कमरे में पहुँचा तो उसे यूँ लगा जैसे कमरे की एक-एक चीज़ उससे ज़ोर-ज़ोर से पूछ रही है, बेगम कहाँ है ? नाहीद कहाँ है ? बेगम को कहाँ छोड़ आए हो ? मिली जुली आवाज़ों का यह शोर बढ़ता गया और उसने कानों पर हाथ रख लिए। लेकिन यह आवाज़ें बुलन्द से बुलन्दतर होती गईं। छत पर मूसलाधार बारिश के कतरे शोर कर रहे थे और बिजली की गरज से कोठी के दरो-दीवार हिल रहे थे। अकरम ने कानों से हाथ हटा कर मुँह पर रख लिए और होंठों को दाँतों तले दबा लिया जैसे यह अलफ़ाज उसके मुँह पे भाग निकलने को तड़प रहे हों—मैंने बेगम को क़त्ल कर दिया है। मैं कमज़ोर हूँ....मैं नहीफ़ हूँ....अकेला हूँ। कोई मेरे दिमाग़ को कशमकश से छुड़ाए। मैं क़ातिल हूँ।

मुझे बख़्श दो। मैं गुनाहगार हूँ। मुझे यह दौलत नहीं चाहिए....। वह शायद चीख़ ही उठता कि कोठी के सामने एक मोटर आ कर रुकी और दूसरे लमहे दरवाज़े पर भारी भरकम दस्तक हुई।

अकरम ने इसे भी वाहमा ही समझा लेकिन दरवाज़ा दूसरी बार खटका तो रही-सही हिम्मत के सहारे दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। डरते-डरते एक किवाड़ खोला। बाहर का मंज़र देख कर वह ग़श खाने ही वाला था कि, "आप मिस्टर अकरम है?" के अलफ़ाज़ ने उसे बेदार कर दिया। 'ओह! आप....' अकरम ने हैरतज़दगी में ज़ेरे-लब कहा। उस की आँखें ठहर गईं, मुँह खुल गया और आहिस्ता से रुक-रुक कर बोला, "पुलिस? पुलिस को किस ने बुलाया था।" अकरम जैसे अपने आप से बातें कर रहा था।

"जी हाँ, पुलिस!....मैं हूँ इन्सपेक्टर खान ज़माँ और ये दोनों सिपाही हैं।" बावर्दी पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा, "हम रावलपिंडी पुलिस हेडक्वाटर से आए हैं। रास्ते में मोटर खराब हो गई थी वरना हम जल्दी पहुँच जाते। बेगम कहाँ हैं?" इन्सपेक्टर ने पूछा। "उनका नाम नाहीद फ़र्ज़ाना है? हम ज़रा उन्हें देखना चाहते हैं।"

"ओह बेगम!" अकरम के पाँव तले की ज़मीन हिल रही थी। अब ज़मीन सरकने लगी। उसने सोफ़े के गिलाफ़ के कोने को मजबूती से पकड़ लिया। जैसे डूबते के हाथ में तिनका आ गया हो। "बेगम! जी हाँ, उनका नाम नाहीद फ़र्ज़ाना था....है।"

"ज़रा उन्हें बुला दीजिए।"

"उन्हें बुला दूँ?" अकरम के लहजे में बेपनाह खौफ़ और हैरत थी। "वह....ओह....वह शाम को शापिंग के लिए चली गई थीं।"

"तो हम उनका इन्तज़ार करेंगे।"

"अगर वह रात भर नहीं आईं तो?" अकरम ने मुस्कराने की कोशिश की लेकिन लरज़ते हुए होंटों ने मुस्कराहट कबूल नहीं की।

"तो हम रात भर यहीं बैठेंगे।" इन्सपेक्टर ने संजीदगी से कहा, "हम उन्हें देखे बग़ैर नहीं जाएँगे।"

छत पर बारिश का शोर अँधेरी फ़िज़ा के परखच्चे उड़ा रहा था। कमरे में बैठे हुए चारों आदमी खामोश थे लेकिन अकरम की भीतरी दुनिया में बेढंगा शोर बरपा था। एक ख़याल आता था और एक जाता था। उसे कमरे की हर चीज़ घूमती हुई दिखाई देने लगी। और कानों में फिर वही चीख़ सुनाई दी—

"नाहीद फ़र्ज़ाना कहाँ है ? बेगम कहाँ है ? तुम झूठे हो। वह शापिंग के लिए नहीं गई। बेशम कहाँ है ? यह पुलिस वाले हैं....बेगम कहाँ है ?"

"मैंने उसे क़त्ल कर दिया है," अकरम के मुँह के ये अलफ़ाज़ आम की गुठली की तरह फिसल गए।

"क्या कहा आपने ?" इन्सपेक्टर ने सोफ़े पर से उछलते हुए पूछा। "क्या आप ने उन्हें....'

"हाँ, हाँ, !" अकरम पर दीवानगी तारी हो गई। वह चीख कर बोला, "मैंने उसे क़त्ल कर दिया है। उस खड्ड में जा कर देखो....लेकिन....लेकिन...." वह कहते-कहते रुक गया और खलाओं में घूरने लग गया।

इन्सपेक्टर ने उठकर अकरम के कंधे थाम लिए और नर्म लेहजे में कहा, "बोलिए, घबराइए नहीं। लाश खड्ड में पड़ी हुई है और आप ने उसे क़त्ल कर दिया है।"

अकरम ने निहायत आहिस्ता-आहिस्ता गर्दन इन्सपेक्टर की तरफ़ घुमाई और कहा, "मुझे यह यक़ीन था कि मैंने यह क़त्ल निहायत होशियारी से किया है और खोज़ नहीं छोड़ा....इन्सपेक्टर साहब ! क़त्ल कर लेना आसान है लेकिन उसके रद्दे-अमल (प्रतिक्रिया) को सँभालना नामुमकिन है ! मैंने एक़बाले जुर्म कर के कुछ सकून पाया है। खुदारा मुझे इतना बता दीजिए आप को इतनी जल्दी किस तरह पता चल गया कि मैंने बेगम को क़त्ल कर दिया है।"

"मिस्टर अकरम !" इन्सपेक्टर ने पुलिस वालों की तरह मुस्कुरा कर कहा, "आप के एक़बाले जुर्म तक हमें पता न था कि आप अपनी बीवी को क़त्ल कर चुके हैं। हमें कराची से आप की बेगम का यह खत मिला है। हम इसके बारे में पूछने आए थे। लीजिए आपको खत पढ़ कर सुनाते हैं। आपकी बेगम ग़ालिबन अर्से से बीमार थीं और मरज़ लाइलाज था।"

"जी हाँ।"

"यह खत कराची से पोस्ट किया गया है। शायद वहाँ से चलने के एक आध रोज़ पहले...." इन्सपेक्टर ने लिफ़ाफ़े में से हल्के सब्ज़ रंग का काग़ज़ निकाल कर खोला और दूर से अकरम को दिखा कर पूछा, "आप बेगम के दस्तखत तो पहचानते होंगे ?"

"जी हाँ।" अकरम ने आगे झुक कर तहरीर देखी और कहा, "यह बेगम के पैड का वरक़ है और तहरीर उन्हीं के हाथ की लिखी हुई है।"

"बेगम ने पुलिस हेडक्वार्टर को लिखा है........।" इन्सपेक्टर खत पढ़ने

लगा, "मैं अरसे से हड्डियों के दर्द में मुब्तिला हूँ। सैकड़ों इलाज कराए लेकिन फ़ायदा न हुआ। मिस्टर अकरम ने, जो मेरे मौजूदा शौहर हैं मेरे लिए अपनी ज़िन्दगी का आराम व सकून कुर्बान कर के मेरा हाथ थाम लिया और मेरी उदास ज़िन्दगी को खुशियों से भर दिया। उन्होंने मुझे वह मुहब्बत दी जिसके लिए मैं दीवानी हुई जा रही थी। उम्मीद थी कि मैं तन्दरुस्त होकर अकरम की मुहब्बत व ईसार को क़ीमत अदा कर सकूँगी। लेकिन क़ुदरत ने यह उम्मीद पूरी न की। मुझे अकरम के साथ गहरा प्यार है। मेरी मुहब्बत बर्दाश्त नहीं कर सकती कि जिस इन्सान को मैं दिल व जान से चाहती हूँ उसे अपने मरीज़ व बेकार जिस्म के साथ चिरकाए रखूँ और उसकी ज़िन्दगी अजीरन बनाए रखूँ। अकरम जवान है और उसकी उमँगें महज़ मेरे खातिर बूढ़ी हो गई हैं। मैं चाहती हूँ कि उसे आज़ाद कर दूँ। वह मेरी तमामतर दौलत और जायदाद सँभाल ले और दूसरी शादी कर ले। लिहाज़ा मैंने खुदकुशी का फ़ैसला कर लिया है। मैं मिस्टर अकरम के साथ कल कराची से जा रही हूँ। मेरे पहुँचने के तीन दिन बाद जो कि हमारी शादी की पहली सालगिरह का दिन होगा मैं ज़हर खाकर खुदकुशी कर लूँगी। मैं तमाम जायदाद और असासा मिस्टर अकरम के नाम मुन्तक़िल करती हूँ। वसीयतनामे की एक नक़ल एहतियातन आप को भेज रही हूँ। मेरे मरने के बाद अकरम को परीशान न किया जाय क्योंकि अपनी मौत की ज़िम्मेदार मैं खुद हूँ। शादी की पहली सालगिरह के मौक़े पर अपनी जान से अज़ीज़ कोई और तोहफ़ा नहीं जो मैं अपने महबूब के क़दमों में पेश करूँ।"

तेरी आवाज़

साहिर लुधियानवी

रात सुनसान थी, बोझल थीं फ़िज़ा की साँसें।
रूह पर छाए थे, बेनाम ग़मों के साए॥
दिल को ये ज़िद थी कि तू आए तसल्ली देने।
मेरी कोशिश थी कि कमबख़्त को नींद आ जाए॥

देर तक आँखों में चुभती रही तारों की चमक।
देर तक ज़ेह्न सुलगता रहा तनहाई में॥
अपने ठुकराए हुए दोस्त की पुरसिश[1] के लिए।
तू न आई, मगर इस रात की पहनाई[2] में॥

यूँ अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आई।
जैसे पर्वत का जिगर चीर के झरना फूटे॥
या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़पकर नागाह[3]।
आसमानों से कोई शोख़ सितारा टूटे॥

शहद सा घुल गया तलख़ाब-ए-तनहाई[4] में।
रंग सा फैल गया दिल के सियहख़ाने[5] में॥
देर तक यूँ तेरी मस्ताना सदाएँ[6] गूँजीं।
जिस तरह फूल चटकने लगें वीरानों में॥

तू बहुत दूर किसी अनजुमने-नाज़[7] में थी।
फिर भी महसूस किया मैंने कि तू आई है॥
और नग़मों में छुपाकर मेरे खोए हुए ख़्वाब।
मेरी रूठी हुई नींदों को मना लाई है॥

१—पूछना २—विस्तार (समय) ३—अचानक ४—एकान्त का कड़वा घूँट ५—अँधेरा मकान ६—आवाज़ें ७—रंग-सभा।

रात की सतह पे उभरे तेरे चेहरे के नुक़ूश[1]।
वही चुपचाप सी आँखें वही सादा-सी नज़र ।।
वही ढलका हुआ आँचल, वही रफ़तार का ख़म[2]।
वही रह-रह के लचकता हुआ नाज़ुक पैकर[3] ।।

तू मेरे पास न थी, फिर भी सहर होने तक।
तेरा हर साँस मेरे जिस्म को छूकर गुज़रा ।।
क़तरा-क़तरा तेरे दीदार[4] की शबनम टपकी।
लमहा-लमहा तेरी ख़ुशबू से मुअत्तर[5] गुज़रा ।।

अब यही है तुझे मंज़ूर तो ऐ जाने-क़रार।
मैं तेरी राह न देखूँगा सियह रातों में ।।
ढूँढ लेंगी मेरी तरसी हुई नज़रें तुझको।
नग़म-ओ-शेर की उमड़ी हुई बरसातों में ।।

अब तेरा प्यार सताएगा तो मेरी हस्ती।
तेरी मस्ती-भरी आवाज़ में ढल जाएगी ।।
और ये रूह, जो तेरे लिये बेचैन-सी है।
गीत बनकर तेरे होंटों प मचल जाएगी ।।

तेरे नग़मात, तेरे हुस्न की ठंडक लेकर।
मेरे तपते-हुए माहौल में आजाएँगे ।।
चन्द घड़ियों के लिये हो कि हमेशा के लिये।
मेरी जागी हुई रातों को सुला जाएँगे ।।

———

१—आकार २—लचक ३—बदन ४—दर्शन ५—सुगंधित

आख़री मुलाक़ात

जाँ निसार अख़्तर

मत रोको इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आए हैं॥
मैं ख़ुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥

दो पाँव बने हरियाली पर — एक तितली बैठी डाली पर।
कुछ जगमग जुगनू-जंगल से — कुछ झूमते हाथी बादल-से।
ये एक कहानी नींद भरी — एक तख़्त पे बैठी एक परी।
कुछ गुनगुन करते परवाने — दो नन्हे नन्हे दस्ताने।
कुछ उड़ते रंगीं गुब्बारे — बिब्बू के दुपट्टे के तारे।
ये चेहरा बन्नो बूढ़ी का — ये टुकड़ा माँ की चूड़ी का।

मत रोको इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आए हैं॥
मैं ख़ुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥

अलसायी हुई रुत सावन की — कुछ सोंधी ख़ुशबू आँगन की।
एक टूटी रस्सी झूले की — एक चोट कसकती कूल्हे की।
सुलगी-सी अँगीठी जाड़ों में — एक चेहरा कितनी आड़ों में।
कुछ चाँदनी रातें गर्मी की — एक लब पे बातें नर्मी की।
कुछ रूप हसीं काशानों का — कुछ रंग हरे मैदानों का।
कुछ हार महकती गलियों के — कुछ नाम वतन की गलियों के।

मत रोको इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आए हैं॥
मैं ख़ुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥

कुछ चाँद चमकते गालों के   कुछ भौंरे काले बालों के।
कुछ नाज़ुक शिकनें आँचल की   कुछ नर्म लकीरें काजल की।
एक खोई कड़ी अफ़सानों की   दो आँखें रोशनदानों की।
एक सुर्ख़ दुलाई गोट लगी   क्या जाने कब की चोट लगी।
एक छल्ला फीकी रंगत का   एक लाकेट दिल की सूरत का।
रूमाल कई रेशम से कढ़े   वो खत जो कभी मैंने न पढ़े।

मत रोको इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आये हैं॥
मैं खुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥

कुछ उजड़ी माँगें शामों की   आवाज़ शिकस्ता जामों की।
कुछ टुकड़े खाली बोतल के   कुछ घुँघरू टूटी पायल के।
कुछ बिखरे तिनके चिलमन के   कुछ पुर्ज़े अपने दामन के।
ये तारे कुछ थर्राए हुए   कुछ गीत कभी के गाए हुए।
कुछ शेर पुरानी ग़ज़लों के   उनवान अधूरी नज़्मों के।
टूटी हुई एक अश्कों की लड़ी   एक खुश्क क़लम एक बन्द घड़ी।

मत रोको इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आए हैं॥
मैं खुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥

कुछ रिश्ते टूटे-टूटे-से   कुछ साथी छूटे-छूटे-से।
कुछ बिगड़ी-बिगड़ी तस्वीरें   कुछ धुँधली-धुँधली तहरीरें॥
कुछ आँसू छलके-छलके-से   कुछ मोती ढलके-ढलके-से।
कुछ नक़्श हैराँ-हैराँ-से   कुछ अक्श ये लरज़ाँ-लरज़ाँ-से॥
कुछ उजड़ी-उजड़ी दुनियाएँ   कुछ भटकी-भटकी आशाएँ।
कुछ बिखरे-बिखरे सपने हैं   ये ग़ैर नहीं सब अपने हैं॥

मत रोके इन्हें पास आने दो।
ये मुझसे मिलने आए हैं॥
मैं खुद न जिन्हें पहचान सकूँ।
कुछ इतने धुँधले साये हैं॥
मत रोको इन्हें पास आने दो॥

हिमायत अली शाएर

गीत

दो चार क़दम बस और कि साथी मंज़िल दूर नहीं,
दो-चार क़दम
ये राह गुज़ारे हस्ती[१] है, पुरख़ार[२] सही,
हम राहनवर्दों[३] के हक़ में तलवार सही,
इस राह के हर हर गाम[४] पे सौ आज़ार सही,
लहराओ अलम,[६]
दो-चार क़दम
दो-चार क़दम बस और कि साथी मंज़िल दूर नहीं,
दो-चार क़दम
चलना हैं मुक़द्दर हम-सब का, बस चलते रहो।
जलने में है जीवन-ज्योति निहाँ[७] बस जलते रहो
सूरज की तरह हर रोज़ उभरते-ढलते रहो,
सब हो के बहम,
दो-चार क़दम
दो-चार क़दम बस और कि साथी मंज़िल दूर नहीं,
दो-चार क़दम

दूर की आवाज़

अख़तरुल ईमान

नुक़रई घन्टियाँ-सी बजती हैं
धीमी आवाज़ मेरे कानों में
दूर से आ रही है, तुम शायद
भूले बिसरे हुए ज़मानों में
अपनी मेरी शरारतें शिकवे
याद कर कर के हँस रही हो कहीं

१—जीवन २—काँटों भरी ३—चलने वालों ४—क़दम ५—रोग ६—झंडे ७—छुपे।

अनजान समय

अनवर मुअज़्ज़म

चन्दा देश के मतवालो, एक बात हमें बतलाओगे।
क्या धरती से ऊब गए, जो दुनिया नई बसाओगे॥
किस सपने ने मन परचाया, किस से आँख चुराओगे।
किन बातों से जी घबराया, किन से हाथ छुड़ाओगे॥
जाओ पर इतना देख लो, क्या साथ अपने ले जाओगे॥

नीर नैन के, घाव सुख़न[1] के, सहमी आशाएँ मन की।
रंग बदन के, रूप चलन के, पथराई आँखें रन की॥
ख़ून सुनहरा, साँस रुपहली[2] जो धड़कन सो आहन[3] की।
कुछ मेहराब, 'सलीब' 'क्लस[4] की उड़ती हुई रंगत के ग़म।
कुछ मग़रिब के जिस्म की खुशबू कुछ शौक़ की रूह के ज़ख़्म॥
कुछ शहरों की सहरा-साज़ी,[5] कुछ बढ़ती वहशत का रम।
कुछ प्यासे अरमानों का नम और कुछ ख्वाबों की शबनम॥
क्या ऐसी ही तस्वीरों से चाँद का मन बहलाओगे।
चन्दा देश को जाने वालो, क्या खोया क्या पाओगे॥

तुमने आँखें खोल के पाया, दुनिया क्या है तपती धूप।
हमने आँखें मूँदके देखा, चारों ओर है छाया-रूप॥
चाँदनी तपती धूप से गुज़री, दहकी भड़की आग बनी।
पलकों की छाया में उतरी महकी और सुहाग बनी॥
दिल दुनिया का रात हमारी, दिन हरदम है रात कहाँ।
दिल सपनों का बात हमारी दिल से चली है बात कहाँ॥
सच्चाई और शक्ति को दास बनाना ये है तुम्हारी जीत।
और सपनों के पीछे-पीछे चलना हुई हमारी रीत॥
तुम हो ज्ञान डगर के राही, हम अनजान-समय के मीत।
ज़र्रों का दिल तोड़ने वालो, तारों से क्या निभेगो पीत॥

१—बात २—चाँदी की ३—लोहे की ४—मेहारब, सलीब, क्लश, ये इसलाम, इसाई और हिन्दू धर्म के प्रतीक हैं। ५—जगंल बनाना

ब
हा
र

एहसान दानिश

बदल रहा है खिज़ाँ का मौसम बहार पैग़ाम दे रही है।
हज़ार रंगों की एक धनुक-सी फ़िज़ा में साँसें सी ले रही है॥

ज़बाने-गुल पर जो है फ़साना उसे मेरे कान सुन रहे हैं।
सबा का लहजा, शमीम की लै, तमाम अनजान सुन रहे हैं॥

नज़र जमा दी है ज़र्रे-ज़र्रे ने शाखसारों की दिलकशी पर।
हैं तितलियों के नक़ूश पर्रां[१] सफ़ेद कलियों की चाँदनी पर॥

बलन्द शाखों प बादलों से छनी हुई धूप गा रही है।
शऊर[२] इतना किसे कि समझे नसीम क्या गुनगुना रही है॥

है गूँज भौंरों की गोशे-गुल[३] में कि जैसे बाँबी प बीन बाजे।
है पत्ती-पत्ती से ये नुमायाँ जो काम जिसका है उसको साजे॥

फ़सूने-मौसम[४] ने आबो-गिल[६] में हज़ार जादू जगा दिये हैं।
लचकती शाखों को कोंपलों के हसीन कंगन पिन्हा दिये हैं॥

हरा-भरा गुलसिताँ का आँगन बहिश्त[७] को मात कर रहा है।
हों लाख गुंचों की सुर्ख आँखें जो फूल से बात कर रहा है॥

लिये हैं क्या शहरे-रंगों-बू ने जुनूँ[८] भरी खाक के सहारे।
ज़मी से पौदे निकल रहे हैं हवाए-नमनाक[९] के सहारे॥

जो मोड़ है जन्नते-नज़र है जो रास्ता है वो दिलनशीं[१०] है।
निगाह चकराके गिर न जाए कि एक पल भी सुकूँ नहीं है॥

निगाहो-दिल का ये है तक़ाज़ा कि बूटे-बूटे को प्यार कर लूँ।
मआल[११] कुछ हो शरीअते-मीरे-गुलसिताँ एख्तयार करलूँ[१२]॥

१—उड़ते चित्र २—ज्ञान ३—फूल का कान ४—ज़ाहिर ५—मौसम का जादू ६—मिट्टी-पानी ७—स्वर्ग ८—पागलपन ९—भीगी हवा १०—दिल में बैठ जाने वाला ११—नतीजा १२—फुलवारी के सरदार का धर्म स्वीकार कर लूँ।

जन्नत से मन्टो का ख़त

राजा मेहदी अली ख़ाँ

१

मैं ख़ैरीयत से हूँ लेकिन कहो, कैसे हो तुम ? 'राजा' ?
बहुत दिन क्यों रहे तुम फ़िल्म की दुनिया में गुम, राजा ?
ये दुनियाए-अदब से क्यों किया तुम ने किनारा था।
अरे ऐ बेअदब, क्या शेर से 'ज़र' तुम को प्यारा था ?
जो नज़्में तुम ने लिक्खी थीं कभी जन्नत के बारे में।
छपी थीं वो यहाँ भी 'खुल्द'[१] के पहले शुमारे में ।।
अदब की, शेर की दुनिया में तुम लौट आए अच्छा है।
अरे, लिखवा लो नज़्में फिर से, तुम चिल्लाए अच्छा है ।।
मगर फिर सोचता हूँ शेर लिखकर क्या करोगे तुम।
ये अन्दाज़ा है मेरा ग़ालिबन भूके मरोगे तुम ।।
ये बेहतर है किसी अच्छी सी मिल में नौकरी कर लो।
करो तुम शाएरी तफ़रीह को और पेट यूँ भर लो।

२

ये वो दुनिया है जिसने केस चलवाए अदीबों पर।
बहुत की बारिशे-मश्क़े-सितम[२] हम खुशनसीबों पर ।।
हुआ पैदा यहाँ जो नुक्तादाँ[३] सदियों में सालों में।
मरा सड़कों पै वो या सड़ गया फिर अस्पतालों में ।।
हों ज़िन्दा हम तो नाक और भौं चढ़ाकर नाम धरते हैं।
जो मर जाएँ तो फिर देखो ये कितनी क़द्र करते हैं ।।
यकायक एक दिन रोएँगे ये बरसी मना लेंगे।
ये ग़ाज़ी[४] हम शहीदों के लिये झंडे उठा लेंगे ।।
पढ़ेंगे मरसिये[५], तड़पेंगे, कर डालेंगे तक़रीरें।
हमारा नाम करने की करेंगे लाख तदबीरें ।।

१—स्वर्ग नाम की पत्रिका का पहला अंक- २—अत्याचार की वर्षा
३—समझदार आदमी ४—वीर-सूर ५—शोक की कविता।

हमारे बाल-बच्चों से न पूछेंगे कि कैसे हो।
अदीबों, शाएरों की क़द्रदानी हो तो ऐसे हो॥
करें क्या हम? न ये दुनिया न वो दुनिया अदीबों की।
ये दुनिया है सज़ाओं की वो दुनिया है खतीबों[1] की॥

३

ज़मीं वाले वो कैसे भी हों हर दम याद आते हैं।
जो दुनिया में उठाए वो हसीं ग़म याद आते हैं॥
ज़मीं वालों की सोहबत[2] में कभी जो दिन गुज़ारे थे।
क़लम लिखने से क़ासिर[3] है कि वो दिन कितने प्यारे थे॥
वो गलियाँ 'बाइक्ला' की दूर से मुझको बुलाती हैं।
वहाँ के घर की यादें दिल में अब तक गुनगुनाती हैं॥
मुझे उस घर से सफ़िया[4] की मुहब्बत याद आती है।
मुझे जन्नत में भी वो घर की जन्नत याद आती है॥
जहाँ बच्चों की सूरत देखकर मैं मुस्कराता था।
जहाँ आकर मैं दुनिया का हर-एक ग़म भूल जाता था॥
बिला नाग़ा जहाँ हर शाम को तुम मिलने आते थे।
जहाँ सब दोस्त मिलकर एक नई जन्नत बसाते थे॥
वो जन्नत लुट चुकी, दिल में मगर आबाद है अब तक।
फ़िज़ा उस घर की वक़्फ़े-मातमो-फ़रियाद[5] है अब तक॥
तुम अक्सर अब भी उस घर की सड़क पर से गुज़रते हो।
वो सब-कुछ लुट चुका, बेकार तुम क्यों आहें भरते हो॥
यही उजड़ा हुआ घर फिर बसाना चाहता हूँ मैं।
बलन्दी छोड़कर "पस्ती"[6] प आना चाहता हूँ मैं॥

४

फ़लक[7] पर मैं हूँ और तुम हो ज़मीं पर, जी नहीं लगता।
जहाँ भी जाऊँ जन्नत में कहीं पर जी नहीं लगता॥
मैं चाहूँ भी तो अब दुनिया में वापस आ नहीं सकता।
खुशी बनकर तुम्हारी महफ़िलों पर छा नहीं सकता॥

१—भाषण देने वाले २—संगत ३—असमर्थ ४—मंटो की पत्नी ५—मातम और फ़रियाद से भरा ६—ऊँचाई ७—नीचे। ८—आकाश (देवलोक)।

ज़मीं वालों से ए मलऊन[1] कब तोड़ोगे तुम नाते।
बआसानी तुम आ सकते हो ज़ालिम क्यों नहीं आते॥
फ़लक से रोज़ मैं आवाज़ देता हूँ तुम्हें राजा!
तुम्हें मालूम है राजा का है एक क़ाफ़िया, 'आ जा'॥
ज़मीं से बोरिया बिस्तर उठाओ और चले आओ।
मेरे घर आओ, मेरा बेल बजाओ और चले आओ॥
करोड़ों मर गए चुपचाप लेकिन तुम नहीं मरते।
जो मर्दे-नेक[2] हैं जीने प इतनी ज़िद नहीं करते॥
अगर कुछ उम्र बाक़ी है तो करके ख़ुदकुशी[3] आओ।
मैं हूँ जब तक यहाँ ख़ौफ़े-जहन्नुम से न घबराओ॥
मैं जुर्मे-ख़ुदकुशी[4] को लड़-झगड़ के बख़शवा लूँगा।
तुम्हारा नाम हर जन्नत के परचे में उछालूँगा॥
चले आओ, चले आओ मुझे तुम से मुहब्बत है।
चले आओ, चले आओ, यहाँ राहत ही राहत है॥

५

नहीं मैं ख़ुदग़रज़ सुन लो तुम्हें मैं क्यों बुलाता हूँ।
मेरे राजा तुम्हें मैं एक ख़ुशख़बरी सुनाता हूँ॥
ख़बर ये गर्म थी कुछ दिन से जन्नत के हसीनों में।
तुम्हारा नाम भी शामिल है जन्नत के मकीनों में॥
ये सुनकर मैं नई आबादियों में दौड़ता आया।
जो की इंक्वाएरी तो इस ख़बर को मैंने सच पाया॥
तुम्हारा महल भी देखा, बहुत ही ख़ूबसूरत है।
ये समझो जगमाते नूर[7] और चीनी की मूरत है॥
तुम्हारी मुन्तज़िर हूरें[8] वहाँ बेताब रहती हैं।
चमन के अन्दलीबों[9] की तरह बेताब रहती हैं॥
वो मुझसे पूछती रहती हैं, बतलाओ वो कैसे हैं?
फ़रिश्ते हैं कि इनसाँ हैं? वो ऐसे कि वैसे हैं?

१—पापी २—भले आदमी ३—आत्महत्या ४—नर्क का भय ५—आत्म-हत्या का अपराध ६—रहने वालों ७—प्रकाश ८—अप्सराएँ ९—बुलबुलों

तुम्हारी झूटी तारीफ़ों के पुल मैं बाँध देता हूँ।
ख़ुदा से बाद में रो-रो के माफ़ी माँग लेता हूँ॥
जवाँ हूरें कहीं बूढ़ी न हो जाएँ, चले आओ।
ये जंगल में मुहब्बत के न खो जाएँ चले आओ॥
उन्हें छुप-छुप के एक कमबख़्त मुल्ला घूरा करता है।
बचा ला इनको ऐ राजा कि वो इन सब प मरता है॥
ये चंचल हिरनियाँ तकते ही उसको भाग जाती हैं।
मेरी हूरों को आकर हाल अपना सब सुनाती हैं॥

६

बहुत जो याद आते हैं अब उनके नाम लेता हूँ।
ज़मीं के दोस्तों के नाम कुछ पैग़ाम देता हूँ॥
बहेन 'इसमत'[१] से कहना कब तलक फ़िल्में बनाओगी।
ये हालत हो गई है, आह क्या अब भी न आओगी॥
जो याद आ जाए 'इसमत' की तो 'शाहिद'[२] भी चला आए।
वो 'ज़िद्दी' आते-आते अपनी सब फ़िल्में जला आए॥
'महेन्दर नाथ' को और 'कृश्न'[३] को भी ख़त ये दिखलाओ।
जो मुमकिन हो तो दोनों भाइयों को साथ ले आओ॥
अगर दुनिया न आती हो मुआफ़िक़ 'फ़ैज़ व'[४]-'राशिद'[५] को ?
तो उनसे पूछकर लिक्खो मैं भेजूँ अपने क़ासिद[६] को॥
न आएँ गर तो कह देना, कि 'पितरस'[७] ने बुलाया है।
तुम्हारी याद में 'तासीर'[८] तड़पा, तिलमिलाया है॥
तुम्हें हर रोज़ 'हसरत' और 'सालिक'[९] याद करते हैं।
तुम्हें ये दोनों अख़बारों के मालिक याद करते हैं॥
मुझे उम्मीद है ये सुनके दोनों दौड़े आएँगे।
मेरी जन्नत में आकर एक नई जन्नत बसाएँगे॥
दुआ है ये ख़ुदाया, सब ज़मीं के दोस्त मर जाएँ।
ये जन्नत के चमन, ये घर, ये सड़कें उनसे भर जाएँ॥

१—इसमत चुग़ताई २—इसमत के पति शाहिद लतीफ़ ३—कृश्न चन्द्र ४-५—प्रसिद्ध उर्दू कवि फ़ैज़ और राशिद ६—दूत ७—पितरस (उर्दू हास्य लेखक) ८—डा० तासीर (साहित्यकार) ९—हसरत और सालिक (उर्दू पत्रकार)।

फ़िराक़ साहब

की

साहित्य एकेडमी से पुरस्कृत पुस्तक

की चुनी हुई रचनाएँ

रात भी, नींद भी, कहानी भी।
हाए क्या चीज़ है जवानी भी॥
एक पैग़ामे-ज़िन्दगानी भी।
आशिक़ी मर्गे-नागहानी[1] भी॥
इस अदा का तेरी जवाब नहीं।
मेहर्बानी भी सरगरानी[2] भी॥
दिल को अपने भी ग़म थे दुनिया में।
कुछ बलाएँ थीं आसमानी भी॥
दिल को शोलों से करती है सैराब[3]।
ज़िन्दगी आग भी है पानी भी॥
लाख हुस्ने-यक़ीं[4] से बढ़कर है।
उन निगाहों की बदगुमानी भी॥
इश्क़े नाकाम की है परछाईं।
शादमानी[5] भी कामरानी[6] भी॥
देख दिल के निगारखाने[6] में।
ज़ख्मे-पिनहाँ[7] की है निशानी भी॥
खल्क़[8] क्या-क्या मुझे नहीं कहती।
कुछ सुनूँ मैं तेरी ज़बानी भी॥
दिन को सूरजमुखी है वो नव-गुल[9]।
रात को है वो रातरानी भी॥
दिले-बदनाम तेरे बारे में।
लोग कहते हैं एक कहानी भी॥
दिल में एक हूक भी उठी ऐ दोस्त।
याद आई तेरी जवानी भी॥
पास रहना किसी का रात की रात।
मेहमानी भी, मेज़बानी भी॥
ज़िन्दगी ऐन दीदे-यार[10] 'फ़िराक़'।
ज़िन्दगी हिज्र[11] की कहानी भी॥

१—अचानक मौत २—उलझन ३—सींचती हैं—४ आशा पूर्ण विश्वास ५—खुशी ६—विजय ६—चित्रशाले में ७—छुपा ज़ख्म ८—जनता ९—नया फूल १०—माशूक़ का दर्शन ११—वियोग।

आज भी क़ाफ़िलए-इश्क़ रवाँ[1] है कि जो था।
वही मील और वही संगे-निशाँ[2] है कि जो था॥
फिर तेरा ग़म वही रुसवाए-जहाँ[3] है कि जो था।
फिर फ़साना बहदीसे-दिगराँ[4] है कि जो था॥
मंज़िलें गर्द की मानिन्द[5] उड़ी जाती हैं।
वही अन्दाज़े-जहाने-गुज़राँ[6] है कि जो था॥
ज़ुलमतो- नूर[7] में कुछ भी न मुहब्बत को मिला।
आज तक एक धुँधलके का समाँ है कि जो था॥
यूँ तो इस दौर में बेकैफ़[8] सी है बज़्मे-हयात[9]।
एक हंगामा सरे-रत्ले-गराँ[10] है कि जो था॥
लाख कर जौरो-सितम,[11] लाख कर एहसानो-करम[12]।
तुझ प ऐ दोस्त वही वहमो-गुमाँ[13] है कि जो था॥
आज फिर इश्क़ दो आलम[14] से जुदा होता है।
आस्तीनों में लिए कौनो-मकां[15] है कि जो था॥
इश्क़े अफ़सुर्दा [16] नहीं आज भी अफ़सुर्दः बहुत।
वही कम-कम असेर सोज़े-निहां[17] है कि जो था॥
क़ुर्ब[18] ही कम है न दूरी ही ज़ियादा लेकिन।
आज वो रब्त[19] का एहसास कहाँ है कि जो था॥
जान दे बैठे थे एक बार हवस[20] वाले भी।
फिर वही मरहलए-सूदो-ज़ियाँ[21] है कि जो था॥
फिर तेरी चश्मे-सुख़न-संज[22] ने छेड़ी कोई बात।
वही जादू है वही हुस्ने-बयाँ[23] है कि जो था॥
तीरा-बख़्ती [24] नहीं जाती दिले-सोज़ाँ[25] की 'फ़िराक़'।
शम्आँ के सर प वही आज धुआँ है कि जो था॥

१—चलता हुआ २—निशान का पत्थर ३—दुनिया में बदनाम ४—दूसरों का कहा हुआ, ५—धूल के समान, ६—चलती हुई दुनिया का ढंग ७—अँधेरे-उजाले में ८—फीकी ९—जीवन-सभा १०—शराब के बड़े प्याले में ११—ज़ुल्म और अत्याचार १२—मेहरबानी और एहसान १३—भ्रम, ख़याल १४—लोक-परलोक १५—सब लोक १६—उदास, उदासीन १७—भीतरी दर्द, जलन का असर १८—नज़दीकी १९—संबन्ध २०—वासना २१—घाटे-नफे की उलझन २२—बात करती आँख २३—विवरण का आकर्षण २४—बदनसीबी २५—जलता, सुलगता हुआ दिल ।

सर में सौदा[१] भी नहीं दिल में तमन्ना भी नहीं।
लेकिन इस तर्के-मुहब्बत[२] का भरोसा भी नहीं॥
दिल की गिनती न यगानों[३] में न बेगानों में।
लेकिन इस जलवागहे-नाज़[४] से उठता भी नहीं॥
शिकवए-जौर[५] करे क्या कोई उस शोख़ से जो।
साफ़ क़ायल भी नहीं, साफ़ मुकरता भी नहीं॥
मेहरबानी को मुहब्बत नहीं कहते ऐ दोस्त।
आह अब मुझसे तेरी रंजिशे-बेजा[६] भी नहीं॥
एक मुद्दत से तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं॥
आज ग़फ़लत[७] भी उन आँखों में है पहले से सिवा।
आज ही खातिरे-बीमार-शकेबा[८] भी नहीं॥
बात ये है कि सुकूने-दिले-वहशी[९] का मुक़ाम!
कुंजे ज़िन्दाँ[१०] भी नहीं वुसअते-सहरा[११] भी नहीं!!
अरे सय्याद[१२] हमीं गुल हैं, हमी बुलबल हैं।
तू ने कुछ आह सुना भी नहीं देखा भी नहीं॥
आज ये मजमए-अहबाब[१३] ये बज़्मे-खामोश[१४]।
आज महफ़िल में 'फ़िराक़'-सुखन-आरा[१५] भी नहीं॥

———

१—पागलपन २—प्रेम त्याग ३—मित्रों ४—माशूक़ की सभा ५—अत्याचार की शिकायत ६—बिना किसी आधार की शिकायत ७—लापर्वाही ८—पीड़ित रोगी का खयाल। ९—घबराए मन की शान्ति १०—क़ैदखाने का एकान्त ११—जंगल का विस्तार १२—शिकारी १३—दोस्तों का जवाब १४—मित्रों का जमघट १५—बात में जादू पैदा करने वाला फ़िराक़।

शामे-ग़म[1] कुछ उस निगाहे-नाज़[2] की बातें करो।
बेख़ुदी[3] बढ़ती चली है, राज की बातें करो॥
ये सुकूते-नाज़[4] ये दिल की रगों का टूटना।
ख़ामुशी में कुछ शिकस्ते-साज़[5] की बातें करो॥
नकहते-ज़ुल्फ़े परेशाँ[6] दास्ताने शामे-ग़म[7]।
सुब्ह होने तक इसी अन्दाज की बातें करो॥
हर रगे-दिल वज्द[8] में आती रहे दुखती रहे।
यूँही उसके जा ओ-बेजा[9] नाज़, की बातें करो॥
जो अदम[10] की जान है, जो है पयामे-ज़िन्दगी।
उस सुकूते-राज़[11] उस आवाज़ की बातें करो॥
इश्क़ रुसवा[12] हो चला बेकैफ़ सा बेज़ार सा।
आज उसकी नरगिसे-ग़म्माज़[13] की बातें करो॥
नाम भी लेना है जिसका एक जहाने-रंगों-बू[14]।
दोस्तो उस नौबहारे-नाज़[15] की बातें करो॥
कुछ क़फ़स की तीलियों से छन रहा है नूर[16] सा।
कुछ फ़िज़ा, कुछ हसरते-परवाज़[17] की बातें करो॥
जो हयाते-जाविदाँ[18] है, जो है मर्गे-नागहाँ[19]।
आज कुछ उस नाज़, उस अन्दाज़ की बातें करो॥
इश्क़े-बेपरवा भी अब कुछ नाशिकेबा[20] हो चला।
शोख़ि-ए-हुस्ने करिश्मासाज़[21] की बातें करो॥
जिसकी फ़ुरक़त[22] ने पलट दी इश्क़ की काया 'फ़िराक़'।
आज उस ईसा-नफ़स[23] दमसाज़[24] की बातें करो॥

१—वियोग की संध्या २—माशूक़ की नज़र ३—आत्म-विस्मरण ४—प्रेयसी का मौन ५—साज़ का टूटना ६—बिखरी ज़ुल्फ़ों की सुगंध ७—वियोग की रात की कथा ८—आनन्द ९—ग़लत-सही १०—अतीत, अज्ञात (परलोक) ११—रहस्य की शान्ति १२—बदनाम १३—नरगिस के फूल जैसी, सब-कुछ जानने वाली आँख १४—रंग और सुगंध का संसार १५—बहार के ताज़ा फूल (माशूक़) १६—प्रकाश १७—उड़ने की इच्छा १८—असीम जीवन १९—अचानक मृत्यु २०—उदासीन २१—करिश्मा दिखाने वाले रूप की शोख़ी २२—वियोग २३—मुर्दे को जिन्दा करने वाला २४—दोस्त।

किसी का यूँ तो हुआ कौन उम्र भर फिर भी।
ये हुस्नो-इश्क़ तो धोका है सब मगर फिर भी॥
हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुज़र फिर भी॥
झपक रही हैं ज़मानो-मकाँ[1] की भी आँखें।
मगर है क़ाफ़िला आमादए-सफ़र[2] फिर भी॥
शबे-फ़िराक़[3] से आगे है आज मेरी नज़र।
कि कट ही जाएगी ये शामे-बेसहर[4] फिर भी॥
खराब होके भी सोचा किये तेरे महजूर[5]।
यही कि तेरी नज़र है तेरी नज़र फिर भी॥
हो बेनयाज़े-असर[6] भी कभी तेरी मिट्टी।
वो कीमिया[7] ही सही, रह गई कसर फिर भी॥
लिपट गया तेरा दीवाना गरचे मंज़िल से।
उड़ी-उड़ी सी है ये खाके-रहगुज़र फिर भी॥
तेरी निगाह से बचने में उम्र गुज़री है।
उतर गया रगे-जाँ[8] में ये नेशतर फिर भी॥
ग़मे-फ़िराक़ के कुश्तों का हश्र क्या होगा।
ये शामे-हिज्र तो हो जाएगी सहर फिर भी॥
फ़ना भी होके गराँबारिये हयात न पूछ[9]।
उठाए उठ नहीं सकता ये दर्दे-सर फिर भी॥
सितम[10] के रंग हैं हर इल्तिफ़ाते पिनहां में[11]।
करमनुमा हैं तेरे और सर-बसर फिर भी[12]॥
खता मआफ़ तेरा अफ़्व[13] भी है मिस्ले-सज़ा[14]।
तेरी सज़ा में है एक शाने-दरगुज़र[15] फिर भी॥
अगरचे बेखुदिये-इश्क़[16] को ज़माना हुआ।
'फ़िराक़' करती रही काम वो नज़र फिर भी॥

१—समय और स्थान २—यात्रा के लिये तत्पर ३—वियोग की रात ४—ऐसी सांझ जिसका सवेरा न हो। ५—तेरे वियोग के मारे ६—जिसमें असर न हो ७—जिससे सोना बने ८—खास रग ९—मरने के बाद भी ज़िन्दगी का असर न पूछ १०—अत्याचार ११—छिपी मेहरबानी में १२—तरे सारे अत्याचार मेहरबानी मालूम होते हैं १३—माफ़ी १४—सज़ा की तरह १५—माफ़ी का अन्दाज़ १६—प्रेम का आत्म-विस्मरण।

मुझको मारा है हर एक दर्दो-दवा से पहले।
दी सज़ा इश्क़ ने हर जुर्मो-ख़ता से पहले॥
आतशे-इश्क़[1] भड़कती है हवा से पहले।
होंट जलते हैं मुहब्बत में दुआ से पहले॥
फ़ितने बरपा हुए हर ग़ुचए-सरबस्ता[2] से।
खुल गया राज़े-चमन[3]चाके-क़बा[4] से पहले॥
चाल है बादए-हस्ती[5] का छलकता हुआ जाम।
हम कहाँ थे तेरे नक़्शे-कफ़े-पा[6] से पहले॥
अब कमी क्या है तेरे बेसरोसामानों को।
कुछ न था तेरी क़सम तर्को-फ़ना[7] से पहले॥
इश्क़े-बेबाक[8] को दावे थे बहुत ख़लवत[9] में।
खो दिया सारा भरम शर्मो-हया से पहले।
ख़ुद-ब-ख़ुद चाकहुएपैरहने[10] लाला-ओ-गुल[11]।
चल गई कौन हवा बादे-सबा[12] से पहले॥
हम सफ़र राहे-अदम[13] में न हो तारों भरी रात।
हम पहुँच जाएँगे इस आबला-पा[14] से पहले॥
पर्दए-शर्म[15] में सद बर्क़े-तबस्सुम[16] के निसार[17]।
होश जाते रहे नैरङ्गे-हया[18] से पहले॥
मौत के नाम से डरते थे हम ऐ शौक़े-हयात[19]!
तूने तो मार ही डाला था क़ज़ा[20] से पहले॥
बेतकल्लुफ़ भी तेरा हुस्ने ख़ुद आरा[21] था कभी।
एक अदा और भी थी हुस्ने-अदा से पहले॥
ग़फ़लतें हस्तिये-फ़ानी[22] की बता देंगी तुझे।
जो मेरा हाल था एहसासे-फ़ना[23] से पहले॥
हम उन्हें पाके फ़िराक़ और भी कुछ खोए गए।
ये तकल्लुफ तो न थे अहदे-वफ़ा[24] से पहले॥

१—प्रेम की आग २—बन्द कली ३—फुलवारी का रहस्य ४—लबादा, क़बा फटने से पहले ५—जीवन की मदिरा ६—पग-चिन्ह ७—मृत्य और त्याग ८—निर्भय-प्रेम ९—एकान्त १०—लिबास ११—लाला और गुलाब का फूल १२—ठंडी हवा १३—अतीत की राह १४—जिसके पैर में आबले हों १५—लाज के पद १६—मुस्कराहट की बिजली १७—निछावर १८—लाज का चमत्कार १९—ज़िन्दगी का शौक़ २०—मौत २१—अपने-आप को सजाने वाला रूप २२—अस्थाई जीवन की उपेक्षाएँ २३—मृत्यु का आभास २४—प्रेम की प्रतिज्ञा।

ये नकहतों की नर्मरवी,[2] ये हवा, ये रात।
याद आ रहे हैं इश्क़ को टूटे तअल्लुक़ात ॥
जादू से जिनके राज़ बने सामने की बात।
उन आँखों के दिलों पै खुलें क्या मुआमलात ॥
मायूसियों[3] की गोद में दम तोड़ता है इश्क़।
अब भी कोई बना ले तो बिगड़ी नहीं है बात ॥
कुछ और भी तो हो इन इशारात[4] के सिवा।
ये सब तो ऐ निगाहे-करम,[5] बात-बात-बात ॥
एक उम्र कट गई है तेरे इन्तज़ार में।
ऐसे भी हैं कि कट न सकी जिनसे एक रात ॥
कब तक रहेगी आँख तेरी साज़े-बे-सदा[6]।
हाँ टूट जाए अब ये सुकूते-नज़र[7] तो बात ॥
हम अहले-इन्तज़ार[8] के आहट पै कान थे।
ठंडी हवा थी, ग़म था तेरा, ढल चली थी रात ॥
यूँ तो बची-बची सी उठी वो निगाहे-नाज़[9]।
दुनियाए-दिल में हो ही गई कोई वारदात ॥
जिनका सुराग़[10] पा न सकी ग़म की रूह भी।
नादाँ, हुए हैं इश्क़ में ऐसे भी सानहात[11] ॥
हर सइयो-हर अमल[12] में मुहब्बत का हाथ है।
तामीरे-ज़िन्दगी[13] के समझ कुछ मुहर्रिकात[14] ॥
उस जा तेरी निगाह मुझे ले गई जहां।
लेती हो जैसे साँस ये बेजान काएनात[15] ॥

१—सुगंधों २—धीमे चलना ३—निराशाओं ४—संकेतों ५—कृपा-दृष्टि ६—बेआवाज़ साज़ ७—दृष्टि का मौन ८—इन्तज़ार करने वालों ९—माशूक़ की नज़र १०—पता ११—घटनाएँ १२—हर कोशिश और हर काम में १३—जीवन का निर्माण १४—प्रेरणाएँ १५—निर्जीव विश्व।

क्या नींद आए उस को जिसे जागना न आए।
जो दिन को दिन करे वो करे रात को भी रात ॥
दरिया के मद्दोजज़र[1] भी पानी के खेल हैं।
हस्ती[2] ही के करश्मे हैं क्या मौत क्या हयात[3] ॥
अहले-रज़ा[4] में शाने-बग़ावत भी हो ज़रा।
इतनी भी ज़िन्दगी न हो पाबन्दे-रस्मियात[5] ॥
हम अहले-दिल हैं चश्मे-करम[6] से भी बेनयाज़[7]।
सुन ऐ निगाहे-यार कि अब आ पड़ी है बात ॥
हम अहले-ग़म ने रंगे-ज़माना बदल दिया।
कोशिश तो की सभी ने मगर बन पड़े की बात ॥
पैदा करे ज़मीन नई, आसमाँ नया।
इतना तो ले कोई असरे-दौरे काएनात[8] ॥
उठ बन्दगी से मालिके-तक़दीर बनके देख।
क्या वसवसा[9] अज़ाब[10] का क्या काविशे नजात[11] ॥
शाएर हूँ गहरी नींद में हैं जो हक़ीक़तें।
चौंका' रहे हैं उनको भी मेरे तवहहुमात[12] ॥
मुझको तो ग़म न फ़ुर्सतें-ग़म भी ने दी 'फ़िराक़'।
दे फ़ुर्सतें-हयात न जैसे ग़मे-हयात ॥

———

१—ज्वार-भाटा २—अस्तित्व ३—जीवन ४—वफ़ादारों ५—खिजों की पाबन्द ६—कृपा-दृष्टि ७—लापरवाह ८—विश्व की वेदना का प्रभाव ९—खटका १०—दण्ड, सज़ा ११—मुक्ति का प्रयत्न १२—सन्देह।

वादे की रात, मरहबा[१], आमदे यारे मेहबाँ[२]।
ज़ुल्फ़े-सियाह[२] शबफ़िशाँ[३], आरिज़े-नाज़ महचकाँ[४]॥
शाम भी थी धुआँ-धुआँ, हुस्न भी था उदास-उदास।
याद-सी आके रह गईं दिल को कई कहानियाँ॥
रात कमाल कर गईं आलमे-कर्बो-दर्द[५] में।
दिल को मेरे सुला गईं तेरी नज़र की लोरियाँ॥
सरहदे-ग़ैब तक[६] तुझे साफ़ मिलेंगे नक़्शे-पा[७]।
पूछ न ये फिरा हूँ मैं तेरे लिए कहाँ-कहाँ॥
आरज़ियत[८] का सोज़[९] भी देख तो सोज़े-आरज़ी[१०]।
बीते हुए युगों से पूछ किस को सबात[११] है यहाँ॥
कोई नहीं जो साथ दे तेरी हरीमे-नाज़[१२] तक।
बिखरे हुए न महो-नजूम[१३] देते हैं सब तेरा निशाँ॥
बीत गए हैं लाख युग सूए-वतन[१४] चले हुए।
पहुँची है आदमी की ज़ात चार क़दम कशाँ-कशाँ[१५]॥
जैसे खिला हुआ गुलाब चाँद के पास लहलहाए।
रात वो दस्ते-नाज़[१६] में जामे निशाते-अरग़वाँ[१७]॥
राज़े वजूद[१८] कुछ न पूछ सुब्हे-अज़ल[१९] से आज तक।
कितने यक़ीन[२०] चल बसे कितने गुज़र गए गुमाँ[२१]॥

१—खूब, स्वागत २—मेहर्बान दोस्त का आगमन २—काली ज़ुल्फ़ें ३—रात को चमकाने वाले ४—माशूक़ के गाल जो चाँद को चमकाने वाले हैं ५—दर्द और तड़प की हालत में ६—अतीत की सीमा तक ७—पग-चिन्ह ८—अस्थाई होना ९—जलन १०—क्षणिक जलन ११—स्थायित्व १२—माशूक़ की महफ़िल १३—चाँद-तारे १४—वतन की ओर १५—बड़ी मुशकिल से १६—माशूक़ के हाथ में १७—खुशी की शराब का जाम १८ अस्तित्व का रहस्य १९—सृष्टि के प्रभात से २०—विश्वास २१—भ्रम।

तुझ से यही कहेंगी, क्या गुज़री है मुझ पै रात भर।
जो मेरी आस्तीं प हैं तेरे ग़मों की सुर्खियाँ ॥

दूर बहुत ज़मीन से पहुँची है एक किरन की चोट।
नीम-तबस्सुमे-खफ़ी[1] रह गईं पिसके बिजलियाँ ॥

सीनों में दर्द भर दिया छेड़के दास्ताने-हुस्न[2]।
आज तो काम कर गई इश्क़ की उम्रे-राएगाँ[3] ॥

आह फ़रेबे-रंगो-बू[4] अपनी शिकस्त[5] आप है।
बादे-नज़ारए-बहार[6] बढ़ गईं और उदासियाँ ॥

ऐ मेरी शामे-इन्तज़ार कौन ये आ गया लिये।
जुल्फ़ों में एक शबे दराज़ आँखों में कुछ कहानियाँ ॥

मुझको 'फ़िराक़' याद है पैकरे रंगो-बूए-दोस्त[7]।
पाँव से ता जबीने-नाज़ मेहर्फ़िशाँ व मह्चकाँ[8] ॥

१—हलकी छुपी हुई मुस्कराहट २—सौन्दर्य की कथा ३—प्रेम की उम्र जो बेकार हुई ४—रंग और सुगंध का भ्रम ५—हार ६—बहार को देखने के बाद ७—लंबी रात ८—माशूक का रंग और सुगंध-भरा शरीर ९—जो सर से पाँव तक चाँद और सूरज को चमकाने वाला है।

ये सबाहत की ज़ौ[1] मह-चकाँ-मह चकाँ[2] ।
ये पसीने की रौ कहकशाँ-कहकशाँ[3] ॥
इश्क़ था एक दिन दास्ताँ-दास्ताँ ।
आज क्यों है वही बेज़बाँ-बेज़बाँ ॥
दिल को पाया नहीं मंज़िलों-मंज़िलों ।
हम पुकार आए हैं कारवाँ-कारवाँ ॥
इश्क़ भी शादमाँ-शादमाँ[4] इन दिनों ।
हुस्न भी इन दिनों मेह्रबाँ-मेह्रबाँ ॥
दम-बदम शबनमो-शोला की ये लवें ।
सर-से-पा तक बदन गुलसिताँ-गुलसिताँ ॥
बैठना नाज़ से अंजुमन-अंजुमन ।
देखना नाज़ से दास्ताँ-दास्ताँ ॥
महकी-महकी फ़िज़ा खुशबुए ज़ुल्फ़ से ।
पंखड़ी होंट की गुलफ़िशाँ-गुलफ़िशाँ[5] ॥
जिसके साए में एक ज़िन्दगी कट गई ।
उम्रे-ज़ुल्फ़े-रसा जाविदाँ-जाविदाँ[6] ॥
ले उड़ी है मुझे बूए ज़ुल्फ़े सियह[7] ।
ये खिली चाँदनी बोस्ताँ-बोस्ताँ[8] ॥
आज संगम सरासर जुवे-इश्क़[9] है ।
एक दरियाए ग़म बेकराँ-बेकराँ[10] ॥
जिस तरफ़ जाइये मतलए नूर-नूर[11] ।
जिस तरफ़ जाइये महवशाँ-महवशाँ[12] ॥
बू ज़मीं से मुझे आ रही है तेरी ।
तुझको क्यों ढूँढिये आसताँ-आसताँ[13] ॥
सच बता मुझको क्या यूँही कट जाएगी ।
ज़िन्दगी इश्क़ की राएगाँ-राएगाँ[14] ॥
रूप की चाँदनी सोज़े-दिल, सोज़े दिल ।
मौजे-गंगो-जमन साज़े जाँ, साज़े जाँ ॥

१—सौन्दर्य की लहर २—चाँद को शर्माने वाली ३—आकाश-गंगा के समान ४—खुश-खुश ५—फूल बरसाने वाली ६—काली ज़ुल्फ़ अमर हो जाए ७—काली ज़ुल्फ़ की सुगंध ८—चमन-चमन ९—इश्क़ की नहर १०—अथाह ११—प्रकाश का स्रोत १२—चाँद-से चेहरे १३—चौखटों पर १४—व्यर्थ ।

अहदो-पैमाँ[1] कोई हुस्न भी क्या करे।
इश्क़ भी तो है कुछ बदगुमाँ-बदगुमाँ ॥
क्यों फ़िज़ाओं की आँखों में थे अश्क[2] से।
वो सिधारे हैं जब शादमाँ-शादमाँ[3] ॥
लब प आई न वो बात ही हमनशीं[4]।
आए क्या-क्या सुख़न[5] दरमियाँ-दरमियाँ ॥
ढूँढते-ढूँढते ढूँढ लेंगे तुझे।
गो निशाँ है तेरा बेनिशाँ-बेनिशाँ ॥
हम को सुनना बहरहाल तेरी खबर।
माजरा-माजरा दास्ताँ-दास्ताँ ॥
जी में आता है तुझको पुकारा करूँ।
रहगुज़र-रहगुज़र आस्ताँ-आस्ताँ ॥
याद आने लगीं फिर अदाएँ तेरी।
दिलनशीं-दिलनशीं जाँसिताँ-जाँसिताँ[6] ॥
क्यों तेरे ग़म की चिंगारियाँ हो गईं।
सोज़े-दिल सोज़े-दिल सोज़े-जाँ सोज़े-जाँ ॥
साथ है रात की रात वो रश्के-मह[7]।
मेज़बाँ-मेज़बाँ, मेहमाँ-मेहमाँ ॥
इश्क़ की ज़िन्दगी भी ग़रज़ कट गई।
ग़मज़दा-ग़मज़दा, शादमाँ-शादमाँ ॥
अब पड़े अब पड़े उसके माथे पै बल।
अलहज़र-अलहज़र[8] अलअमाँ-अलअमाँ ॥
इश्क़ खुद अपनी तारीफ़ यूँ कर गया।
अह्रन-अह्रन[9] ईज़दाँ-ईज़दाँ[10] ॥
कैफ़ो मस्ती हैं इमकाँ-दर-इमकाँ फ़िराक़[11]।
चाँदनी है अभी नौजवाँ-नौजवाँ ॥

१—क़ौल-क़रार २—आँसू ३—खुश-खुश ४—साथी ५—बातें ६—दिल को लुभाने वाली और जान को सताने वाली ७—वह स्थान जिसे देख ईर्ष्या हो। ८—त्राहि त्राहि। ९—शैतान १०—खुदा ११—आनन्द और उन्माद की सारी संभावनाएँ हैं।

हर उक़दए तक़दीरे-जहाँ[1] खोल रही है।
हाँ, ध्यान से सुनना ये सदी बोल रही है॥
अँगड़ाईयाँ लेती है तमन्ना तेरी दिल में।
शीशे में परी नाज़ के पर तोल रही है॥
रह-रह के खनक जाती है साक़ी ये शबे-माह[2]।
एक जाम पिला खुनकिए-शब[3] बोल रही है॥
दिल तंग है शब को कफ़ने नूर पिन्हाके[4]।
वो सुबह जो ग़ुंचों[5] की गिरह खोल रही है॥
एक आग लगा देती है दीवानों के दिल में।
ग़ुंचों की रगों में जो तरी डोल रही है॥
छलकाती है जो आँख निगाहों से गुलाबी।
इस पर्दे में वो ज़ह्र भी कुछ घोल रही है॥
शबनम की दमक है कि शबे-माह की देवी।
मोती सरे-गुलज़ारे-जहाँ[6] रोल रही है॥
रखती है मशीयत[7] हदे-परवाज़[8] जहाँ भी।
इनसान की हिम्मत वहीं पर तौल रही है॥
पहलू में शबे-तार[9] के है कौन सी दुनिया।
जिसके लिये आग़ोश[10] सहर खोल रही है॥
हर आन वो रग-रग में चटकती हुई कलियाँ।
उस शोख़ की एक-एक अदा बोल रही है॥
खुश है दिले-ग़मगीं भी ग़नीमत है ये वक़्फ़ा[11]।
उसकी निगहे-नाज़ भी हँस-बोल रही है॥
छिड़ते ही ग़ज़ल बढ़ते चले रात के साए।
आवाज़ मेरी गेसुए-शब[12] खोल रही है॥
आता है 'फ़िराक़' आज इधर बहरे-ज़ियारत[13]।
बुतखाने[14] की खामोश-फ़िज़ा बोल रही है॥

१—संसार के भाग्य का रहस्य २—चाँदनी रात ३—रात की ठंडक ४—रात को प्रकाश का कफ़न पहनाकर सुबह परेशान है। ५—कलियों ६—फुलवारी में ७—प्रकृति ८—उड़ान की हद। ९—अँधेरी रात १०—गोद ११—मध्यान्तर १२—रात के केश १३—दर्शन के लिये १४—मंदिर।

ये नर्म-नर्म हवा झिलमिला रहे हैं चिराग़।
तेरे ख़याल की ख़ुशबू से बस रहे हैं दिमाग़॥
दिलों को तेरे तबस्सुम[1] की याद यूँ आई।
कि जगमगा उठें जिस तरह मंदिरों में चिराग़॥
झलकती है खिंची शमशीर[2] में नई दुनिया।
हयातो-मौत के मिलते नहीं हैं आज दिमाग़॥
वो जिन के हाल में लौ दे उठे ग़मे-फ़र्दा[3]।
वही हैं अंजुमने-ज़िन्दगी के[4] चश्मो-चिराग़[5]॥
तमाम शोलए-गुल[6] है तमाम मौजे-बहार[7]।
कि ता-हदे-निगहे-शौक़[8] लहलहाते हैं बाग़॥
नई ज़मीन नया आसमाँ, नई दुनिया।
सुना तो है कि मुहब्बत को इन दिनों है फ़राग़[9]॥
जो तोहमतें न उठीं एक जहाँ से उनके समेत।
गुनाहगारे-मुहब्बत निकल गए बेदाग़॥
जो छुपके तारों की आँखों से पाँव धरता है।
उसी के नक्शे-कफ़े-पा[10] से जल उठे हैं चिराग़॥
जहाने राज़[11] हुई जा रही है आँख तेरी।
कुछ इस तरह वो दिलों का लगा रही है सुराग़[12]॥
ज़माना कूद पड़ा आग में यही कहकर।
कि खून चाट के हो जाएगी ये आग भी बाग़॥
निगाहें मतलए नौ[13] पर हैं एक आलम की।
कि मिल रहा है किसी फूटती किरन का सुराग़॥
दिलों में दाग़े-मुहब्बत का अब ये आलम है।
कि जैसे नींद में डूबे हों पिछली रात चिराग़॥
'फ़िराक़' बज़्मे-चिराग़[14] है महफ़िले-रिन्दाँ[15]।
सजे हैं पिघली हुई आग से छलकते अयाग़[16]॥

———

१—मुस्कराहट २—तलवार ३—आगामी कल का ग़म ४—जीवन सभा ५—आँख के तारे ६—फूल की आग ७—बहार की लहर ८—शौक़ की निगाह की हद तक ६—फ़ुरसत १०—पद-चिह्न ११—रहस्य-संसार १२—पता १३—नए क्षितिज पर १४—चिराग़ों की सभा १५—शराब पीने वालों की सभा १६—जाम।

अपने हवास में शबे-ग़म[1] कब हयात[2] है।
ऐ दर्दे-हिज्र[3] तू ही बता कितनी रात है॥
हर काएनात से ये अलग काएनात[4] है।
हैरत सराए-इश्क़[5] में दिन है न रात है॥
जीना जो आ गया तो अजल[6] भी हयात है।
और यूँ तो उम्रे-खिज़्र[7] भी क्या, बेसबात[8] है॥
क्यों इंतहाए-होश[9] को कहते हैं बेखुदी[10]।
खुर्शीद[11] ही की आखिरी मंज़िल तो रात है॥
तोड़ा है लामकाँ[12] की हदों को भी इश्क़ ने।
ज़िन्दाने-अक़्ल[13] तेरी तो क्या काएनात[14] है॥
गरदूँ[15] शरारे-बर्के-दिलें बेक़रार[16] देख।
जिनसे ये तेरी तारों-भरी रात-रात है॥
हस्ती बजुज़ फ़नाए मुसलसल[17] के कुछ नहीं।
फिर किस लिये ये फ़िक्रे-क़रारो-सबात[18] है॥
उस जाने-दोस्ती के खुलूसे-निहाँ[19] न पूछ।
जिसका सितम भी ग़ैरते-सद-इलतेफ़ात[20] है॥
यूँ तो हज़ार दर्द से रोते हैं बदनसीब।
तुम दिल दुखाओ, वक़्ते-मुसीबत तो बात है॥
उनवान ग़फ़लतों[21] के हैं फ़ुरक़त हो या विसाल[22]।
बस फ़ुरसते-हयात 'फ़िराक़' एक रात है॥

१—ग़म की रात में २—ज़िन्दगी ३—वियोग की पीड़ा ४—विश्व (जगत) ५—प्रेम के विचित्र संसार में ६—मौत ७—लम्बी उम्र ८—अस्थायी ९—प्रेम की अन्तिम सीमा १०—आत्म-विस्मरण ११—सूर्य १२—अनन्त १३—तर्क का कारागार १४—हैसियत १५—आकाश १६—बेचैन दिल की चिंगारियाँ १७—निरन्तर मृत्यु जीवन है १८—फिर शान्ति और अमर होने की चिंता क्यों हो १९—छुपी सच्चाई २०—जिसका अत्याचार भी मेहरबानियों को शर्माता है २१—लापरवाही का नाम २२—वियोग या मिलन।

वो आँख ज़बान हो गई है। हर बज़्म[१] की जान हो गई है॥
आँखें पड़ती हैं मैकदों[२] की। वो आँख जवान हो गई है॥
आईना दिखा दिया ये किस ने। दुनिया हैरान हो गई है॥
उस नरगिसे-नाज़ में थी जो बात। शाएर की ज़बान हो गई है॥
अब तो तेरी हर निगाह-काफ़िर। ईमान की जान हो गई है॥
तरग़ीबे-गुनाह[३] लहज़ा-लहज़ा[४]। अब रात जवान हो गई है॥
पहले वो निगाह एक किरन थी। अब एक जहान हो गई है॥
सुनते हैं कि अब नवाए-शाएर[५]। सहरा की अज़ान हो गई है॥
ऐ मौत, बशर[७] की ज़िन्दगी आज। तेरा एहसान हो गई है॥
कुछ अब तो अमान[८] हो कि दुनिया। कितनी हलकान हो गई है।
इंसाँ को खरीदता है इंसाँ। दुनिया भी दुकान हो गई है॥
अक्सर शबे-हिज्र[९] दोस्त की याद। तनहाई की जान हो गई है॥
शिरकत तेरी बज़्मे-क़िस्सागो[१०] में। अफ़साने की जान हो गई है॥
जो आज मेरी ज़बान थी कल। दुनिया की ज़बान हो गई है॥
एक सानहए-जहाँ[११] है वो आँख। जिस दिन से जवान हो गई है॥
रानाइये-क़ामते-दिल आरा[१२]। मेरा अरमान हो गई है॥
मेरी हर बात आदमी की। अज़मत[१३] का निशान हो गई है॥
जो शोख नज़र थी दुशमने-जाँ। वो जान की जान हो गई है॥

हर बैत[१४] 'फ़िराक़' इस ग़ज़ल की।
अबरू की कमान हो गई है॥

१—सभा २—शराबखानों ३—पाप का लोभ ४—क्षण-क्षण ५—५—शाएर की आवाज़ ६—जंगल की आवाज़ ७—इंसान ८—शांति ६—वियोग की रात १०—कहानी कहने वाले की सभा ११—संसार की दुर्घटना १२—खूबसूरत क़द का आकर्षण १३—बड़ाई १४—शेर।

वो चुपचाप आँसू बहाने की रातें । वो एक शख़्स के याद आने की रातें
शबे-मह की वो ठंडी आँचें, वो शबनम । तेरे हुस्न के रसमसाने की रातें ।।
फ़ुआरें सी नग़मों की पड़ती हों जैसे । कुछ उस लब से सुनने सुनाने की रातें ।।
मुझे याद है तेरी हर सुब्हे रुख़सत । मुझे याद हैं तेरे आने की रातें ।।
पुर असरार[1] सी मेरी अर्ज़े-तमन्ना । वो कुछ ज़ेर-लब[2] मुस्कराने की रातें ।।
सरे-शाम[3] से रतजगे का वो सामाँ । वो पिछले पहर नींद आने की रातें ।।
सरे-शाम से ता सहर क़ुर्बे-जानाँ । न जाने वो थीं किस ज़माने की रातें ।।
सरे-मैकदा तश्नगी[4] की वो क़समें । वो साक़ी से बातें बनाने की रातें ।।
हमाआग़ोशियाँ[5] शाहिदे-मेहबाँ[6] की । ज़माने के ग़म भूल जाने की रातें ।।

'फ़िराक़' अपनी क़िस्मत में शायद नहीं थे ।
ठिकाने के दिन या ठिकाने की रातें ।।

१—रहस्यमय २—होंटों ही होंटो में ३—शाम से ही ४—शराबख़ाने में प्यास की ५—आलिंगन ६—मेहबान माशूक़ ।

ये तो नहीं कि ग़म नहीं।
हाँ मेरी आँख नम नहीं॥
तुम भी तो तुम नहीं हो आज।
हम भी तो आज हम नहीं॥
नश्शः संभाले है मुझे।
बहके हुए क़दम नहीं॥
क़ादिरे-दो-जहाँ[१] है गो।
इश्क़ के दम में दम नहीं॥
मौत अगरचे मौत है।
मौत से ज़ीस्त[२] कम नहीं॥
किसने कह ये तुमसे खिज्र[३]।
आबे-हयात[४] सम[५] नहीं॥
कहते हो दह्र[६] को भरम।
मुझको तो ये भरम नहीं॥
अब न खुशी की है खुशी।
ग़म में भी अब, तो ग़म नहीं॥
मेरी निशस्त[७] है ज़मीं।
ख़ुल्द[८] नहीं[९] एरम नहीं॥
और ही है मुक़ामे-दिल।
दैर[१०] नहीं हरम[११] नहीं॥
क़ीमते-हुस्न, दो जहाँ[१२]।
कोई बड़ी रक़म नहीं॥
अहदे-वफ़ा है हुस्ने-यार।
कौल नहीं क़सम नहीं॥
लेते हैं मोल दो जहाँ।
दाम नहीं दिरम[१४] नहीं॥
सोमो-सलात से 'फ़िराक़'।
मेरे गुनाह कम नहीं॥

१—लोक-परलोक पर अधिकार रखने वाला २—ज़िन्दगी ३—सृष्टि के अन्त तक जीने वाला आदमी ४—अमृत ५—ज़हर ६—दुनिया ७—बैठने की जगह, ८६—स्वर्ग १०—मंदिर ११—काबा १२—दोनों लोक के सौन्दर्य का मूल्य १३—रुपया १४—रोज़ा-नमाज़

आँखों में जो बात हो गई है।
एक शरहे-हयात[1] हो गई है॥

जब दिल की वफ़ात[2] हो गई है।
हर चीज़ की रात हो गई है॥

ग़म से छुटकर ये ग़म है मुझको।
क्यों ग़म से निजात हो गई है॥

मुद्दत से ख़बर मिली न दिल की।
शायद कोई बात हो गई है॥

जिस शै[3] पे नज़र पड़ी है तेरी।
तस्वीरे-हयात[4] हो गई है॥

अब हो मुझे देखिये कहाँ सुब्ह।
उन ज़ुल्फ़ों में रात हो गई है॥

इक़रारे-गुनाहे-इश्क़[5] सुन लो।
मुझसे एक बात हो गई है॥

क्या जानिये मौत पहले क्या थी।
अब मेरी हयात हो गई है॥

इस दौर में ज़िन्दगी बशर[6] की।
बीमार की रात हो गई है॥

जीती हुई बाज़िए-मुहब्बत।
खेला हूँ तो मात हो गई है॥

मिटने लगी ज़िन्दगी की क़दरें।
जब ग़म से निजात हो गई है॥

वो चाहें तो वक़्त भी बदल जाए।
जब आए हैं रात हो गई है॥

दुनिया है कितनी बेठिकाना।
आशिक़ की बरात हो गई है॥

एक-एक सिफ़त[7] फ़िराक़ उसकी
देखा है तो ज़ात[8] हो गई है।

१—जीवन का अर्थ २—मृत्यु ३—चीज़ ४—ज़िन्दगी की तस्वीर ५—प्रेम के पाप का इक़रार ६—इंसान ७—गुण ८—स्वरूप।

[मीर की शैली में]

अब अक्सर चुप-चुप से रहे हैं यूँही कभू लब खोलें हैं ।
पहले 'फ़िराक़' को देखा होता, अब तो बहुत कम बोलें हैं ॥
दिन में हम को देखने वालो अपने-अपने हैं औक़ात[१] ।
जाओ न तुम इन खुश्क आँखों पर हम रातों को रोलें हैं ॥
फ़ितरत मेरी इश्क़ो-मुहब्बत, क़िसमत मेरी तनहाई ।
कहने की नौबत ही न आई हम भी किसू के होले हैं ॥
खुँनुक[२]-सियह महके हुए साए फैल-जाएँ हैं जल-थल पर ।
किन जतनों से मेरी ग़ज़लें रात का जूड़ा खोलें हैं ॥
बाग़ में वो ख्वाब-आवर[३] आलम मौजे-सबा[४] के इशारों पर ।
डाली-डाली नौरस पत्ते सहज-सहज जब डोलें हैं ॥
उफ़ वो लबों पर मौजे-तबस्सुम[५] जैसे करवटें लें कौंदे ।
हाय वो आलमे-जुंबिशे-मिजगाँ[६] जब फ़ितने पर तोलें हैं ॥
नक्शो निगारे ग़ज़ल[७] में जो तुम ये शादाबी[८] पाओ हो ।
हम अश्कों में काएनात के नोके क़लम को डुबो लें हैं ॥
उन रातों को हरीमे-नाज़[९] का एक आलम होए नदीम[१०] ।
खलवत में जब वो नर्म-उँग्लियाँ बन्दे-क़बा[११] को खोलें हैं ॥
ग़म का फ़साना सुनने वालो आखिरे-शब[१२] आराम करो ।
कल ये कहानी फिर छेड़ेंगे हम भी ज़रा अब सोलें हैं ॥
हम लोग अब तो अजनबी से हैं कुछ तो बताओ हाले 'फ़िराक़' ।
अब तो तुम्हीं को प्यार करें हैं अब तो तुम्हीं से बोलें हैं ॥

———

१—समय २—ठंडे ३—नींद लाने वाली ४—हवा की लहर ५—मुस्कराहट की लहर ६—चितवन हिलने की अवस्था ७—ग़ज़ल के बेल-बूटों में ८—ताज़गी, हरियाली ९—माशूक़ के साथ एकान्त १० साथी ११—चोली का बन्धन १२—रात के आखीर में ।

हमसे 'फ़िराक़' अक्सर छुप-छुपकर पहरों-पहरों रोओ हो।
वो भी कोई हमीं जैसा है क्या तुम उसमें देखो हो॥
जिन को इतना याद करो हो, चलते-फिरते साए थे।
उनको मिटे तो मुद्दत गुज़री नामो-निशाँ क्या पूछो हो॥
जाने भी दो नाम किसी का आ गया बातों-बातों में।
ऐसी भी क्या चुप लग जाना कुछ तो कहो क्या सोचो हो॥
पहरों-पहरों तक ये दुनिया भूला सपना बन जाए है।
मैं तो सरासर खो जाऊँ हूँ याद इतना क्यों आओ हो॥
क्यों ग़म-दौराँ की परछाईं, तुम पर भी पड़ जाए है।
क्या याद आ जाए है, यकायक, क्यों उदास हो जाओ हो॥
झूठी शिकायत भी जो करूँ हूँ पलक दीप जल जाए हैं।
तुम को छेड़े भी क्या, तुम तो हँसी-हँसी में रो दो हो॥
एक शख्स के मर जाए से क्या हो जाए है लेकिन।
हम जैसे कम होए हैं पैदा, पछताओगे देखो हो॥
इतनी वहशत इतनी वहशत सदके अच्छी आँखों के।
तुम न हिरन हो मैं न शिकारी दूर इतना क्यों भागो हो॥
मेरे नग़मे किसके लिये हैं खुद मुझको मालूम नहीं।
कभी न पूछो ये शाएर से तुम किस का गुन गाओ हो॥
पलकें बन्द, अलसाई ज़ुल्फ़ें, नर्म सेज पर बिखरी हुई।
होंटों पर एक मौजे तबस्सुम सोओ हो या जागो हो॥
गाह तरस जाए हैं आँखें रसजल रूप के दर्शन को।
गाह नींद बनके रातों को नैन-पटों में आओ हो॥
इस दुनिया ही में है सुनें हैं एक दुनियाए-मुहब्बत भी।
हम भी उसी जानिब जावें हैं, बोलो तुम भी आओ हो॥
कुछ तो बताओ रंग-रूप भी तुम इसका ऐ अहले-नज़र।
तुम तो उस को जब देखो हो देखते ही रह जाओ हो॥
अक्सर गहरी सोच में उनको खोया-खोया पावे हैं।
अब है 'फ़िराक़' का कुछ रोज़ों से जो आलम क्या पूछो हो॥

———

आधी रात को

सियाह पेड़ हैं अब आप अपनी परछाईं
ज़मीं से ता महो-अंजुम[१] सुकूत के मीनार
जिधर निगाह करें एक अथाह गुमशुदगी
एक-एक करके फ़सुर्दा[२] चिराग़ों की पलकें
झपक गईं, जो खुली हैं झपकने वाली हैं
झलक रहा है पड़ा चाँदनी के दरपन में
रसीले कैफ़-भरे मंज़रों[३] का जागता ख़्वाब
—फ़लक[४] पे तारों को पहली जमाहियाँ आईं

२

तमोलियों की दुकानें कहीं-कहीं हैं खुली
कुछ ऊँघती हुई बढ़ती हैं शाहराहों पर
सवारियों के बड़े घुँघुरुओं की झंकारें
खड़ा है ओस में चुपचाप हर सिंघार का पेड़
दुल्हन हो जैसे हया की सुगंध से बोझल
ये मौजे-नूर,[५] ये भरपूर ये खिली हुई रात
कि जैसे खिलता चला जाए एक सफ़ेद कँवल
सिपाहे-रूस हैं अब कितनी दूर बर्लिन से
जगा रहा है कोई आधी रात का जादू—
छलक रही है खुमे-ग़ैब[६] से शराबे-वजूद[७]
फ़िज़ाए नीम-शबी[८] नरगिसे-खुमार आलूद[९]
कँवल की चुटकियों में बन्द है नदी का सुहाग

३

ये रस का सेज, ये सुकुमार ये सकोमल गात
नयन-कमल की झपक, कामरूप का जादू

१—चाँद-सितारों तक २—उदास ३—दृश्यों का ४—आकाश पर ५—प्रकाश की लहर ६—अतीत के शराब के मटके से ७—ज़िन्दगी की शराब ८—आधी रात की फ़िज़ा ९—नरगिस की नशे से भरी आँखें।

ये रसमसाई पलक की घनी-घनी परछाईं
फ़लक प बिखरे हुए चाँद और सितारों की
चमकती उँग्लियों से छिड़के साज़े-फ़ितरत[1] के
तराने जागने वाले हैं, तुम भी जाग उठो

४

शुआए-मेह्र[2] ने यूँ उनको चूम-चूम लिया
नदी के बीच कुमुदनी के फूल खिल उट्ठे
न मुफ़लिसी हो तो कितनी हसीन है दुनिया
ये झाएँ-झाएँ सी रह-रहके एक झींगुर की
हिना की टट्टियों में नर्म सरसराहट सी
फ़िज़ा के सीने में ख़ामोश सनसनाहट सी
लटों में रात की देवी की थरथराहट सी
ये काएनात अब एक नींद ले चुकी होगी

५

ये महे-ख़्वाब[3] हैं रंगीन मछलियाँ तहे-आब[4]
कि हौज़े-सहन में अब उनकी चश्मकें[5] भी नहीं
ये सरनुगूँ[6] हैं सरे शाख़[7] फूल गुड़हल के
कि जैसे वे बुझे अंगारे ठंडे पड़ जाएँ
ये चाँदनी है कि उमड़ा हुआ है रस सागर
एक आदमी है कि कितना दुखी है दुनिया में

६

क़रीब चाँद के मँडला रही है एक चिड़िया
भँवर में नूर के करवट से जैसे नाव चले
कि जैसे सीनए-शाएर में कोई ख़्वाब पले
वो ख़्वाब साँचे में जिसके नई हयात[8] पले
वो ख़्वाब जिस से पुराना निज़ामे-ग़म[9] बदले
कहाँ से आती है मदमालती लता की लपट

१—प्रकृति के साज़ २—सूरज की किरन ३—सो रही हैं ४—पानी के नीचे ५—शरारतें ६—सर झुकाए हुए ७—शाख़ पर। ८—नई ज़िन्दगी ९—ग़म की व्यवस्था।

कि जैसे सैंकड़ों परियाँ गुलाबियाँ छिड़काएँ
कि जैसे सैंकड़ों वनदेवियों ने झूले पर
अदाए-खास से एक-साथ बाल खोल दिये
लगे हैं कान सितारों के जिसकी आहट पर
उस इनक़लाब की कोई खबर नहीं आती
दिले-नजूम[1] धड़कते हैं, कान बजते हैं

७

ये साँस लेती हुई काएनात, ये शबे-माह[2]
ये पुरसुकू[3] ये पुरअसरार[4] ये उदास समाँ
ये नर्म-नर्म हवाओं के नीलगूँ[5] झोंके
फ़िज़ा की ओट में मुर्दों की गुनगुनाहट है
धुआँ-धुआँ से मनाज़िर तमाम नमदीदा[6]
खुनुक[7] धुँधलके की आँखें भी नीम ख्वाबीदा[8]
सितारे हैं कि जहाँ पर है आँसुओं का कफ़न
हयात पर्दए-शब में बदलती है पहलू[9]
कुछ और जाग उठा आधी रात का जादू
ज़माना कितना लड़ाई को रह गया होगा
मेरे खयाल में अब एक बज रहा होगा।

८

गुलों ने चादरे-शबनम में मुँह लपेट लिया
लबों प सो गई कलियों की मुस्कराहट भी
ज़रा-भी सुंबुले तर[10] की लटें नहीं हिलतीं
सुकूते-नीमशबी[11] की हदें नहीं मिलतीं
अब इनक़लाब में शायद ज़ियादा देर नहीं
गुज़र रहे हैं कई कारवाँ धुँधलके में
सुकूते-नीम शबी है उन्हीं के पाँव की चाप
कुछ और जाग उठा आधी रात का जादू

१—सितारों के दिल २—चाँदनी रात ३—शान्त ४—रहस्यमय ५—नीलाहट लिये ६—सारे दृश्य भीगी आँखें लिये ७—ठंडे ८—थोड़ी नींद में ९—ज़िन्दगी रात के पर्दे में नई करवट लेती है १०—भीगा सुँबुल का पौदा ११—आधी रात की शान्ति।

९

नई ज़मीन, नया आसमाँ, नई दुनिया
नए सितारे नई गरदिशें, नए दिन-रात
ज़मीं से ता-बफ़लक[१] इन्तज़ार का आलम
फ़िज़ाए-ज़र्द में धुँधले ग़ुबार का आलम
हयाते-मौत नुमा[२] इन्तशार[३] का आलम
है मौजे-दूद[४] कि धुँधला फ़िज़ा की नब्ज़ें हैं
तमाम ख़स्तगि-ओ-माँदगी ये दौरे-हयात[५]
थके-थके से ये तारे थकी-थकी सी ये रात
ये सर्द-सर्द ये बेजान फीकी-फीकी चमक
निज़ामे-सानिया[६] की मौत का पसीना है
ख़ुद अपने-आप में ये काएनात डूब गई
ख़ुद अपनी कोख से फिर जगमगा के उभरेगी
बदल के केचुँली जिस तरह नाग लहराए

१०

ख़ुनुक फ़िज़ाओं में रक़्साँ[९] हैं चाँद की किरनें
कि आबगीनों प पड़ती है नर्म-नर्म फ़ुहार
में मौजे-ग़फ़लते-मासूम[१०] ये-ख़ुमारे-बदन[११]
ये साँस नींद में डूबी ये आँख मदमाती
अब आओ मेरे कलेजे से लगके सो जाओ
ये पलकें बन्द करो और मुझ में खो जाओ

———

३—ज़मीन स आसमान तक ४—मौत जैसी ज़िन्दगी ५—ग्रस्त व्यस्तता ६—धुएँ की लहर ७—थकन सारी ज़िन्दगी पर छा गई है ८—द्वतीय व्यवस्था अर्थात पूँजीवाद। ९—नाच रही हैं १०—मासूम नींद की लहर ११—शरीर का नशा।

शामे-अयादत

अगस्त १९५३ ई०

[सिविल अस्पताल में बीमारी की हालत में]

१

ये कौन मुस्कराहटों का कारवाँ लिये हुए
शबाबो-शेरो-रंगो-नर[१] का धुआँ लिये हुए
धुआँ, कि बर्क़े-हुस्न[२] का महकता शोला है कोई
चुटीली ज़िन्दगी की शादमानियाँ लिये हुए
लबों से पंखड़ी गुलाब की हयात माँगे है
कँवल-सी आँख सौ निगाहे-मेहबाँ लिये हुए
क़दम-क़दम पे दे उठी है लौ ज़मीने-रह गुज़र[३]
अदा-अदा में बेशुमार बिजलियाँ लिये हुए
निकलते-पैठते दिनों की आहटें निगाह में
रसीले होंट फ़स्ले-गुल[४] की दास्ताँ लिये हुए
खुतूते-रुख में जलवागर वफ़ा के नक्श सर बसर
दिले-ग़नी[६] में कुल हिसाबे-दोस्ताँ लिये हुए
वो मुस्कराती आँखें जिन में रक़्स[७] करती है बहार
शफ़क़[८] की, गुल की, बिजलियों की शोखियाँ लिये हुए
अदाए-हुस्न बर्क़-पाश, शोलाज़न, नज़ारा-सोज़[९]
फ़िज़ाए हुस्न ऊदी-ऊदी बिजलियाँ लिये हुए
जगाने वाले नग़मए-सहर[१०] लबों पे मौजज़न
निगाहें नींद लाने वाली लोरियाँ लिये हुए
वो नरगिसे-सियाह, नीमबाज़, मैकदा बदोश[११]

१—जवानी, शाएरी, रंग और प्रकाश २—सौन्दर्य की बिजली ३—रास्ते की ज़मीन ४—बहार ५—गाल की रेखाओं में प्रेम के भाव व्यक्त हैं। ६—उदार हृदय ७—नृत्य ८—सन्ध्या की लालिमा ९—सौन्दर्य की अदा बिजली गिराने वाली, शोला मारती, दृश्य को जलाती हुई १०—होंटों पर प्रभात-गान ११—काली, नरगिसी आँखें शराबखाना लिये।

हज़ार मस्त रातों की जवानियाँ लिये हुए
तग़ाफ़ुलो-ख़ुमार और बेखुदी की ओट में
निगाहें एक जहाँ की होशियारियाँ लिए हुए
हरी-भरी रंगों में वो चहकता बोलता लहू
वो सोचता हुआ बदन खुद एक जहाँ लिये हुए
ज़े फ़र्क़-ताक़दम[१] तमाम चेहरा जिस्मे-नाज़नीं[२]
लतीफ़[३] जगमगाहटों का कारवाँ लिये हुए
तबस्सुमश तकल्लुमे, तकल्लुमश तरन्नुमे[४]
नफ़स-नफ़स[५] में थरथराता साज़े-जाँ लिये हुए
जबीने-नूर[६] जिस पै पड़ रही है नर्म छूट-सी
खुद अपनी जगमगाहटों की कहकशाँ[७] लिये हुए
"सिताराबारो, महचकाँ, व ख़ुरफ़शाँ," जमाले-यार[८]
जहाने-नूर कारवाँ-बकारवाँ लिये हुए
वो ज़ुल्फ़ ख़म-बख़म शमीमे-मस्त से धुआँ-धुआँ[९]
वो रुख़ चमन-चमन बहारे-जाविदाँ[१०] लिये हुए
बमस्तिए जमाले-काएनात, ख़्वाबे-काएनात[१०]
व गरदिशे-निगाहदौरे-आसमाँ लिये[१२] हुए
ये कौन आ गया मेरे क़रीब अज़्व-अज़्व[१३] में
जवानियाँ, जवानियों की आँधियाँ लिये हुए
ये कौन आँख पड़ रही है मुझ पर इतने प्यार से
वो भूली-सी वो याद-सी कहानियाँ लिए हुए
ये किसकी महकी-महकी, साँसें ताज़ा कर गईं दिमाग़
शबों के राज़, नूरे-मह[१४] की नर्मियाँ लिये हुए

१—उपेक्षा, खुमार और आत्मविस्मरण के आवरण में २—सर-से-पैर तक ३—कोमल शरीर ४—निर्मल ५—उसकी मुस्कराहट वार्ता है और उसकी वार्ता संगीत है ६—हर साँस में ७—प्रकाश का मस्तक ८—आकाश-गंगा ९—माशूक़ का सौन्दर्य जो सितारों से भरा है, जो चाँद को चमक देता है, सूर्य को प्रकाश देता है। १०—बालों की हर लहर से वायु सुगंधित हो रही थी। —अमर बहार ११—विश्व का सारा उन्माद और स्वप्न लिये हुए नज़र की हरकत में आकाश की गति लिये हुए १३—अंग-अंग में १४—चाँदनी।

ये किन निगाहों ने मेरे गले में बाँहें डाल दीं
जहान भर के दुख से, दर्द से अमाँ[१] लिये हुए
निगाहे-यार दे गई मुझे सुकूने बेकराँ[२]
वो बेकही वफ़ाओं की गवाहियाँ लिये हुए
मुझे जगा रहा है मौत की ग़ुनूदगी[३] से कौन
निगाहों में सुहाग रात का समाँ लिये हुए
मेरी फ़सुर्दा और बुझी हुई जबीं[४] को छू लिया
ये किस निगाह की किरन ने साज़े-जाँ लिये हुए
सुते से चेहरे पर हयात रसमसाइ, मुस्कराइ
न जाने कब-कब के आँसुओं की दास्ताँ लिये हुए
तबस्सुमे-सहर है अस्पताल की उदास शाम
ये कौन आ गया निशाते-बेकराँ[५] लिये हुए
तेरे न आने तक अगरचे मेहबाँ था एक जहाँ
मैं रोके रह गया हूँ सौ ग़मे-निहाँ[६] लिए हुए
ज़मीन मुस्करा उठी, ये शाम जगमगा उठी
बहार लहलहा उठी, शमीमे जाँ[७] लिये हुए
फ़िज़ाए-अस्पताल है कि रंगो-बू की करवटें
तेरे जमाले-लालागूँ[८] की दास्ताँ लिये हुए
'फ़िराक़' आज पिछली रात क्यों न मर रहूँ कि अब
हयात ऐसी शामें होंगी फिर कहाँ लिये हुए

२

मगर नहीं कुछ और मसलहत थी उसके आने की
जमालो दीदे-यार[९] ये नया जहाँ लिये हुए
इसी नए जहाँ में आदमी बनेंगे आदमी
जबीं प शाहकारे-दह्[१०] का निशाँ लिये हुए
इसी नए जहाँ में आदमी बनेंगे देवता
तहारतों[११] का फ़र्क़े-पाक पर निशाँ[१२] लिये हुए

१—पनाह २—असीम शान्ति ३—निद्रा झपकी ४—मस्तक ५—असीम उन्माद ६—छिपे ग़म ७—प्राण की समीर ८—लाले के फूल जैसा सौन्दर्य ९—माशूक़ का सौन्दर्य और उसका दर्शन १०—संसार की उत्तम रचना ११—पवित्रताओं १२—पवित्र मस्तक ।

ख़ुदाई आदमी की होगी इस नए जहान पर
सितारों के हैं दिल ये पेशगोइयाँ[1] लिये हुए
सुलगते दिल शररफ़शाँ व शोलाबार बर्क़पाश[2]
गुज़रते दिन हयाते-नौ की सुर्ख़ियाँ लिये हुए
तमाम क़ौल और क़सम निगाहे-नाज़े-यार थी
तुलूए-ज़िन्दगीए-नए[3] की दास्ताँ लिये हुए
नया जनम हुआ मेरा कि ज़िन्दगी नई मिली
जियूँगा शामे- दीद[4] की निशानियाँ लिये हुए
न देखा आँख उठाके अहदे-नौ[5] के पर्दादारों ने
गुज़र गया ज़माना यादे-रफ़्तगाँ[6] लिये हुए
हम इनक़्लाबियों ने ये जहाँ बचा लिया मगर
अभी है एक जहाँ वो बदगुमानियाँ लिये हुए

३

नए ज़माने में अगर उदास ख़ुद को पाऊँगा
ये शाम याद करके अपने ग़म को भूल जाऊँगा
अयादते-हबीब[7] से वो आज ज़िन्दगी मिली
ख़ुशी भी चौंक-चौंक उठी तो ग़म की आँख खुल गई
अगरचे डाक्टर ने मुझको मौत से बचा लिया
पर उसके बाद उस निगाह ने मुझे जिला लिया
निगाहे-यार तुझसे अपनी मंज़िलें मैं पाऊँगा
तुझे जो भूल जाऊँगा तो राह भूल जाऊँगा

४

क़रीबतर मैं हो चला हूँ दुख की काएनात से
मैं अजनबी नहीं रहा हयात से, ममात[8] से
वो दुख सहे कि मुझ पे खुल गया है दर्दे-काएनात
है अपने आँसुओं से मुझ पे आईना ग़मे-हयात
ये बेक़ुसूर जानदार दर्द झेलते हुए

१—भविष्यवाणी २—सुलगते दिल चिनगारियाँ बरसाते, शोले लिये और बिजली गिराते हुए ३—नव जीवन का उदय। ४—दर्शन की शाम ५—नवयुग ६—गुज़रे हुओं की याद ७—दोस्त का बीमार को देखने आना ८—मौत।

ये ख़ाको-ख़ूँ के पुतले अपनी जाँ पे खेलते हुए
वो ज़ीस्त[१] की कराह जिस से बेक़रार है फ़िज़ा
वो ज़िन्दगी की आह जिससे काँप उठती है फ़िज़ा
कफ़न है आँसुओं का दुःख की मारी का एनात पर
हयात क्या, उन्हीं हक़ीक़तों से होना बेख़बर
जो आँख जागती रही है आदमी की मौत पर
वो अब्रे रंग-रंग को भी देखती है सादातर*
सिखा गया है दुख मेरा पराई पीर जानना
निगाहे-यार थी यहाँ भी आज मेरी रहनुमा
यही नहीं कि मुझको आज ज़िन्दगी नई मिली
हक़ीक़ते-हयात मुझ पे सौ तरह से खुल गई
गवाह है ये शाम और निगाहे-यार है गवाह
ख़याले-मौत को मैं अपने दिल में अब न दूँगा राह
जियूँगा, हाँ जियूँगा ऐ निगाहे-आश्नाए-यार
सदा-सुहाग ज़िन्दगी है और जहाँ सदा बहार

५

अभी तो कितने नाशुनीदा[२] नग़मए-हयात[३] हैं
अभी निहाँ दिलों से कितने राज़े-काएनात हैं
अभी तो ज़िन्दगी के नाचशीदा[४] रस हैं सैकड़ों
अभी तो हाथ में हम अहले-ग़म के जस हैं सैकड़ों
अभी वो ले रही हैं मेरी शाएरी में करवटें
अभी चमकने वाली हैं छुपी हुई हक़ीक़तें
अभी तो बह्रो-बर[५] पे सो रही हैं मेरी वो सदायँ[६]
समेंट लूँ उन्हें तो फिर वो काएनात को जगायँ
अभी तो रूह बनके ज़र्रे-ज़र्रे में समाऊँगा

१—जीवन २—नहीं सुने हुए ३—जीवन गान (जीवन संगीत) ४—अनचखे ५—समुद्र और ज़मीन पर ६—आवाज़ें।

*The clouds that gather round the setting sun do take a sobar colouring from an eye that hath kept watch o'er man's mortality. —Wordsworth.

अभी तो सुब्ह बनके मैं उफ़क़[1] पे थरथराऊँगा
अभी तो मेरी शाएरी हक़ीक़तें लुटाएगी
अभी मेरी सदाए-दर्द एक जहाँ पे छाएगी
अभी तो आदमी असीरे-दाम[2] है, ग़ुलाम है
अभी तो ज़िन्दगी सद-इनक़्लाब[3] का पयाम है
अभी तमाम ज़ख़्मो-दाग़ है तमद्दुने-जहाँ[4]
अभी रूखे-बशर पर हैं बहीमियत[5] की झाइयाँ
अभी मशीयतों[6] पे फ़त्ह[7] पा नहीं सका बशर[8]
अभी मुक़द्दरों को बस में ला नहीं सका बशर
अभी तो इस दुखी जहाँ में मौत ही का दौर है
अभी तो जिसको ज़िन्दगी कहें वो चीज़ और है
अभी तो ख़ून थूकती है ज़िन्दगी बहार में
अभी तो रोने की सदा है नग़मए-सितार में
अभी तो उड़ती हैं रूखे-बहार पर हवाइयाँ
अभी तो दीदनी[9] हैं हर चमन की बेफ़िज़ाइयाँ[10]
अभी फ़िज़ाए-द[illegible] लेगी करवटों पे करवटें
अभी तो सोती हैं हवाओं की वो सनसनाहटें
कि जिन को सुनते ही हुकूमतों के रंगे-रूख़ उड़ें
चपेटें जिनकी सरकशों की गर्दनें मरोड़ दें
अभी तो सीनए-बशर में सोते हैं वो ज़लज़ले
कि जिनके जागते ही मौत का भी दिल दहल उठे
अभी तो बत्ने-ग़ैब में है इस सवाल का जवाब
खुदाए ख़ैरो-शर भी ला नहीं सका था जिसकी ताब
अभी तो गोद में हैं देवताओं के वो माहो-साल[11]
जो देंगे बढ़के बर्क़े-तूर[12] से हयात को जलाल[13]
अभी रगे-जहाँ में ज़िन्दगी मचलने वाली है
अभी हयात की नई शराब ढलने वाली है

१—क्षितिज २—जाल में फँसा ३—सौ क्रान्तियों ४—संसार की संस्कृति ५—वहशत, हैवानियत। ६—प्राकृतिक शक्तियों पर ७—विजय ८—आदमी ९—देखने लायक १०—फीकापन, बेरंगी ११—भविष्य की कोख में १२—महीने और वर्ष १३—बिजली।

अभी छुरी सितम की डूबकर उछलने वाली है
अभी तो हसरत एक जहान की निकलने वाली है
अभी तो घन-गरज सुनाई देगी इनक़लाब की
अभी तो गोश-बर-सदा[1] है बज़्म-आफ़ताब[2] की
अभी तो पूँजीवाद को जहान से मिटाना है
अभी तो साम्राज़ों को सज़ाए-मौत पाना है
अभी तो दाँत पीसती है शहयारों[3] की
अभी तो खूँ उतर रहा है आँखों में सितारों की
अभी तो इश्तिराकियत[4] के झंडे गड़ने वाले हैं
अभी तो जड़ से कुश्ती-खूँ के नज़्म[5] उखड़ने वाले हैं
अभी किसानो-कामगार राज होने वाला है
अभी बहुत जहाँ में काम-काज होने वाला है
मगर अभी तो ज़िन्दगी मुसीबतों का नाम है
अभी तो नींद मौत की मेरे लिये हराम है
ये सब पयाम एक निगाह में वो आँख दे गई
बयक नज़र कहाँ-कहाँ मुझे वो आँख ले गई

———

१—तेज़ २—कान लगाए ३—सूर्य की सभा अर्थात् सौर मंडल ४—बादशाहों और तानाशाहों ५—साम्यवाद ६—व्यवस्था ।

रुबाइयाँ

हर ऐब से माना कि जुदा हो जाए।
क्या है अगर इंसान खुदा हो जाए॥
शाएर का तो बस कामय है, हर दिल में।
कुछ दर्दे-हयात[१] और सिवा हो जाए॥

दिन डूब गया तो बात कुछ और भी है।
आँख ओझल वारदात कुछ और भी है॥
खामोशियों, तीरगी-व-खुन्की के सिवा[२]।
ऐ अंजुमो-माह ![३] रात कुछ और भी है॥

शाखों पै कँवल गुल के जला देती हैं।
सोये हुए फ़ितनों को जगा देती हैं॥
ये आलमे-सोज़ो - साज़े-गुलज़ारे-जहाँ[४]।
शबनम की लवें आग लगा देती हैं॥

सहरा में ज़माँ-मकाँ[५] के खो जाती हैं।
सदियों बेदार[६] रह के सो जाती हैं॥
अक्सर सोचा किया हूँ खलवत में 'फ़िराक़'।
तहज़ीबें क्यों ग़ुरूब[७] हो जाती हैं॥

एक राज़ से कर रहा हूँ तुझको आगाह।
ममनूओ-[८]हराम कुछ नहीं है वल्लाह॥
जिस काम में महवीयते-कामिल[९] न रहे।
ऐ दोस्त समझ ले कि है वो काम गुनाह॥

१—जीवन की वेदना २—खामोशी, अँधेरे, और ठंडक के सिवा ३—ऐ चाँद-सितारों ४—संसार की फुलवारी में तड़प और संगीत का वातावरण ५—समय और स्थान के असीम फैलाव में ६—जागकर ७—डूब जाती हैं ८—निषिद्ध ९—पूरी तरह खो जाना।

शायर के तसव्वुरात हैं कितने हसीं।
एक आलमे-रंगों-नूर रक्साँ है कहीं॥
जैसे दमे-सुबह लहलहाती किरनें।
जब चूम रही हों वो हिमालय की जबीं[1]।

बे बज्ह नहीं है मेरी अफ़सुर्द दमी[2]।
दुनिया में नहीं चाश्निये-ग़म की कमी॥
संसार को जिस चीज़ को छू देता हूँ।
मिलती है 'फ़िराक़' उसमें अश्कों की नमी॥

हर साज़ से होती नहीं ये धुन पैदा।
होता है बड़े जतन से ये गुन पैदा॥
मीज़ाने-निशातो-ग़म में सदियों तुलकर।
होता है हयात में तवाज़ुन[4] पैदा॥

तनहाई में हम किसे बुलाएँ ऐ दोस्त।
तुम दूर हो किस के पास जाएँ ऐ दोस्त॥
इस दौलते-वक़्त[5] से तो दम घुटता है।
ये नक़्दे-शब[6] कहाँ भुनाएँ ऐ दोस्त॥

ये बज़्मे-खयाल! चूड़ियाँ बजती हैं।
भीगी रातें उदासियाँ तजती हैं॥
दरिया मुखड़ों के उमड़े आते हैं 'फ़िराक़'।
आईनए-दिल में सूरतें सजती हैं॥

लचकीला गात और अवस्था है किशोर।
वो चाल कि जैसे मिल के नाचें सौ मोर॥
कूक उठती हैं कोयलें, वो काली ज़ुल्फ़ें।
मुँह तकता है चन्द्रमा के धोके में चकोर॥

१—मस्तक २—उदासी ३—खुशी और ग़म की तराज़ू में ४—जीवन संतुलन ५—समय या अवकाश का धन ६—रात की पूँज

छिड़काव हुए चबूतरे पर कुछ नम।
बैठी है सुहागिनी, वदन में कुछ-कुछ है खम[1] ॥
चुटकी से शुआए-नूर[2] बरसाती हुई।
है दीदनी[3] चौक पूरने का आलम ॥

है माँद फ़लक[4] पे कहकशाँ[5] का भी निखार।
यूँ पूर रही है चौक वो करके सिंगार ॥
बल खाई लकीरें हैं कि चलता जादू।
बढ़ती हुई चुटकियों की जुंबिश के निसार ॥

करवट से सो रही है खोले गेसू[6]।
पौ फटती है या झलक रहा है पहलू ॥
पलकर मानूस हो गया है कितना।
तलवों से मल रहा है आँखें आहू[7] ॥

हम्माम में उरियानिए-तन[8] का आलम।
पैकर[9] का धुँधलके में झलकना कम-कम ॥
एक हलकी थरथरी सी सर-से-पा तक।
शबनम से धुली शफ़क[10] भी खाती है क़सम ॥

निर्मल जल से नहाके रस की पुतली।
बालों से अरगजे की खुशबू लिपटी ॥
सत-रंग धनुष की तरह बाहों को उठाए।
फैलाती है अलगनी पै गीली साड़ी ॥

निखरी-निखरी, नई जवानी दमे-सुबह[11]।
आँखें हैं सुकून की कहानी दमे-सुबह ॥
आँगन में सुहागिनी उठाए हुए हाथ।
तुलसी पै चढ़ा रही है पानी दमे-सुबह ॥

१—मोड़ २—ज्योति की किरन ३—देखने के लायक़ ४—आकाश ५—आकाश-गंगा ६—बाल ७ मृग ८—शरीर की नग्न अवस्था ९—शरीर १०—ऊषा। ११—सुबह के वक़्त।

ज़ुल्फ़े पुरख़म[1], अनाने-शब[2] मोड़ती है।
आवाज़ तिलिस्मे-तीरगी[3] तोड़ती है॥
यूँ जलवों से तेरे जगमगाती है ज़मीं।
नागिन जिस तरह केंचुली छोड़ती है॥

वो काली रात की कमन्दें[4] टूटीं।
रंगीन शुआएँ[5] तीर बनकर छूटीं॥
वो जूड़े गेसूए-परेशाँ[6] के बँधे।
वो नरगिसे-सुर्मगीं[7] से किरनें फूटीं॥

पनघट पै गगरियाँ छलकने का ये रंग।
पानी हिचकोले लेके भरता है तरंग॥
कांधों पै, सरों पै, दोनों बाहों में कलस।
मद अंखड़ियों में सीनों में भरपूर उमंग॥

ये रूप मदन के भी खता हों औसान।
ये सज जो तोड़ दे रति का अभिमान॥
फीकी पड़ती है धूप ये जोवन-ज्योति।
ये रंग कि आँख खोल दे जीवन-गान॥

ऊषा पिछले को कुमसुनाए जैसे।
रस कलियों की रगों में थरथराए जैसे॥
ये पैकरे-नाज़नीं[8] का आलम दमे-सुबह।
अँगड़ाई सी शफ़क़ को आए जैसे॥

———

१—लहराई ज़ुल्फ़ें २—रात की लगाम ३—अँधेरे का रहस्य ४—फन्दे ५—किरनें ६—बिखरे बाल ७—सुरमा लगी आँख ८—सुन्दर-शरीर।

कुछ चुने हुए अशआर

हम से क्या हो सका मुहब्बत में ।
खैर तुमने तो बेवफ़ाई की ॥

मैं आसमाने-मुहब्बत से रुखसते-शब[1] हूँ ।
तेरा खयाल कोई डूबता सितारा है ॥

जौरो-करम, वफ़ा-जफ़ा, यासो-उम्मीद, क़ुर्बो-बोद[2] ।
इश्क़ की उम्र कट गई चन्द तवह्हुमात[3] में ॥

कुछ चौंक सी उठी हैं फ़िज़ा की उदासियाँ ।
इस दश्ते-बेकसी[4] में सरे-शाम तुम कहाँ ॥

कौन ये ले रहा है अंगड़ाई ।
आसमानों को नींद आती है ॥

देख रफ़्तारे इंक़लाब 'फ़िराक़' ।
कितनी आहिस्ता और कितनी तेज़ ॥

तारीकियाँ चमक गईं आवाज़े-दर्द से ।
मेरी ग़ज़ल से रात की ज़ुल्फ़ें सँवर गईं ॥

मौत का भी इलाज हो शायद ।
ज़िन्दगी का कोई इलाज नहीं ॥

एक फ़ुसूँ-सामाँ[5] निगाहे-आश्ना[6] की देर थी ।
एस भरी दुनिया में हम तनहा नज़र आने लगे ॥

१—विदा होती हुई रात २—अत्याचार मेहरबानी, प्रेम-बेवफ़ाई, आशा-निराशा दूरी-नज़री की ३—भ्रम ४—बेकसी का जंगल ५—जादू भरी ६—माशूक़ की नज़र ।

ये ज़िन्दगी के कड़े कोस, याद आता है।
तेरी निगाहे-करम[1] का घना-घना साया॥

थी मुन्तज़िर[2] सी दुनिया, खामोश थीं फ़िज़ाएँ।
आई जो याद तेरी चलने लगीं हवाएँ॥

तमाम शबनमो-गुल है वो सर-से-ता-बक़दम।
रुके-रुके से कुछ आँसू, रुकी-रुकी सी हँसी॥

ग़रज़ कि काट दिये ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त।
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में॥

मालूम है सेराबिये सरचश्मए-हैवाँ[3]।
बस तश्नालबी[4] तश्नालबी तश्नालबी है॥

तुम मुख़ातिब भी हो क़रीब भी हो।
तुम को देखें कि तुम से बात करें॥

जब-जब इसे सोचा है दिल थाम लिया मैंने।
इंसान के हाथों से इंसान पै जो गुज़री॥

देख आए आज यादों के नगर।
हर तरफ़ परछाइयाँ परछाइयाँ॥

थी यूँ तो शामे-हिज्र[5] मगर पिछली रात को।
वो दर्द उठा 'फ़िराक़' कि मैं मुस्करा दिया॥

छिड़ते ही ग़ज़ल बढ़ते चले रात के साए।
आवाज़ मेरी गेसुए-शब[6] खोल रही है॥

१—कृपा-दृष्टि २—प्रतीक्षा में ३—अमृत के सोते से कितनी तृप्ति होगी ४—तृष्णा ५—वियोग की शाम ६—रात के बाल।

ज़िन्दगी को भी मुँह दिखाना है।
रो चुके तेरे अश्कबार[1] बहुत ॥

चुप हो गए तेरे रोने वाले।
दुनिया का खयाल आ गया है ॥

क़ुलूबे-नूर[2] के साँचे में ढलते जाते हैं।
चिराग़ तेरे तबस्सुम से जलते जाते हैं ॥

वो रातें और ही हैं जिनमें मीठी नींद आ जाए।
खुशी और ग़म में सोने के लिये रातें नहीं होतीं ॥

तू एक था मेरे अशआर में हज़ार हुआ।
इस एक चिराग़ से कितने चिराग़ जल उठे ॥

वो तेरी नर्म दोशीज़ा[3] निगाहें दिल नहीं भूला।
पड़ी जब-जब नज़र तेरी निगाहे-अव्वलीं[4] निकली ॥

अब यादे-रफ़्तगाँ[5] की भी हिम्मत नहीं रही।
यारों ने कितनी दूर बसाई हैं बस्तियाँ ॥

ज़िन्दगी क्या है इसको आज ऐ दोस्त।
सोच लें और उदास हो जाएँ।

शिकवा किया सितम का तो नमदीदा[6] हो गए।
तुम तो ज़रा सी बात में रंजीदा हो गए ॥

एक मुद्दत से दिले-ग़मगीं पै था एक बोझ सा।
आज तेरी याद में रोए तो हल्के हो गए ॥

१—तेरी याद में रोने वाले २—प्रकाश के हृदय में ३—कुँआरी ४—पहली नज़र ५—जाने वालों की याद ६—आँख में आँसू भर लाए।

उर्दू साहित्य प्रकाशन के लिये श्री मसूद अहमद ने भार्गव प्रेस, १, बाई का बाग, इलाहाबाद से मुद्रित करवा कर २१६, दायरा शाह अजमल से प्रकाशित किया।

न्यू मून केमिकल वर्क्स इलाहाबाद का

रोग़न बर्क़

रजिस्टर्ड

३० वर्षों से प्रचलित

घर का डाक्टर

दवाई के क्षेत्र में यह एक गौरवप्रद आविषकार है अंग्रेज़ी औषधियों की भांति जल्दी लाभ पहुंचाता है हर प्रकार की शारीरिक पीड़ा जैसे सिर, कम्मर, गुर्दा और छाती की पीड़ा, मोच, फ़ोतों और मसूड़ों की सूजन, कान की पीड़ा व घाव दांतों और आंखों की पीड़ा व लाली, बच्चों की दुर्बलता, मिठुवा व पसली चलना, नज़ला, ज़ुकाम बिच्छू, बर्रे के डंक, जलने इत्यादि के लिये अचूक है फ़ी शीशी [illegible]

No. 5 Regd. no.

URDU SAHITYA

Bi-monthly in Hindi

FIRAQ NUMBER Price Re. 1.00